जीवन की समस्याएं और समाधान

-मा अमृत प्रिया
स्वामी शैलेंद्र सरस्वती

जीवन की समस्याएं और समाधान

-मा अमृत प्रिया, स्वामी शैलेंद्र सरस्वती

Contents

मानसिक तनाव और चिंता, एंक्जाइटी पैदा हाने के क्या कारण हैं? 4

रोजमर्रा की आपा धापी में एकाग्र रहना कैसे संभव हो पाता है? 4

क्या मनुष्य रोबोट जैसा व्यवहार नहीं करते? 5

ओशो ऐसा क्यों कहते हैं कि प्रायश्चित से मनस्थिति नहीं बदलती? 5

जिंदगी में हमेशा ऐसा क्यों लगता है कि जैसे हम किसी जेल में बंद हों? 6

यदि पूर्व-निर्धारित हैं मनुष्य के तन-मन, तो फिर स्वतंत्रता कहाँ है? 6

क्या मनुष्य जाति वास्तव में सभ्य है? 7

लोग एक दूसरे की बुराई क्यों करते हैं? 9

निंदात्मक नजरिये से कैसे मुक्ति मिले क्योंकि मुझे सदैव उदासी घेरे रहती है? 9

किस तरह की मनुष्य लालची और मतलबी किस्म के होते हैं? 10

क्यों लोग अपने आप को ही समझदार समझते हैं? 11

क्या संकोच शील प्रकृति भी अहंकार का ही एक रूप है? 11

क्या अशुभ की रचना भी प्रभु की मर्जी से हुई है? 13

पाँच मानसिक वृत्तियाँ क्या हैं, और इनसे कैसे मुक्ति मिलती है? 15

मनुष्य की प्रमुख कामनाएं कौन-कौन सी हैं? 16

जीवन का सार -- कामना है असार 16

क्या नियति की धारणा वैज्ञानिक कसौटी पर सही है? 17

शराब पीने की लत त्यागकर मैं एक भला व्यक्ति कैसे बनूं? 17

क्या मैं एक मोटिवेटर बन सकता हूँ जो सभी के जीवन स्वस्थ, सुंदर और आनंदमय बना दे? 19

जीवन में दुख संबंधी गलतफहमियां कौन सी हैं? 20

सुख-दुख दोनों उत्तेजनाएं अशांतिदायी हैं--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं? 21

क्या जीवन में आनंद की प्राप्ति असंभव है? 21

क्या जीवन में आनंद संभव है? 22

अपने आप को खुश रखने के लिऐ क्या करे? 23

जीवन भर खुश कैसे रहें? 23

आपके पास जीवन का एक दिन शेष है आप इसे किस प्रकार बिताना चाहेंगे? 24

कौन-सी बात अधिक महत्वपूर्ण है - खुशी या सफलता? 24

आनंद, प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना, धर्म और प्रभु में अधिक महत्वपूर्ण कौन है? 24
मन को शांत रखने के लिए कौन सा योग करना चाहिए? 27
क्या विपरीत परिस्थितियों में भी शांति मिल सकती है? 27
किस परिस्थिति में शांति नामुमकिन है? 28
क्या किसी खास परिस्थिति में शांत रहना मुश्किल है? 29
कौन सी परिस्थिति में शांत होना असंभव है? 30
किस परिस्थिति में शांति साधना कठिन है? 31
क्या व्यक्ति की मनस्थिति केवल परिस्थिति की उपज नहीं है? 32
शांति हेतु परिस्थिति नहीं, मनस्थिति बदलो--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं? 32
ओशो ने मानसिक एवं आत्मिक अशांति को विकास का लक्षण क्यों बताया? 33
क्या अमीरी की अशांति बेहतर है गरीबी की शांति से? 33
ओशो के अनुसार शांति प्राप्त करने के दो प्रमुख उपाय क्या हैं? 34
क्या नियति की धारणा में छिपी है शांति की कुंजी? 34
क्या शांति भी दो तरह की होती है? 35
महत्वाकांक्षा, अशांति की मां है--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं? 35
मन के चुप होते ही शांति प्रगट हो जाती है--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं? 36
शरीर, मन, आत्मा के तलों पर अशांति के कौन-कौन से रूप हैं? 36
ओशो ऐसा क्यों कहते हैं कि अशांति रोग नहीं, एक लक्षण है? 36
ओशो इसे गलत सवाल क्यों कहते हैं कि शांति कैसे पाई जाए? 37
क्या जिस ढंग से अशांति जन्मी, उसके उलटे ढंग से शांति मिल सकती है? 37
क्या अशांति के कारण समझ कर ही शांति मिल सकती है? 37
समता-भावना का वास्तविक अर्थ क्या है? 39
भगवान कृष्ण के अनुसार समता भाव की साधना कैसे संभव है? 39
क्या स्वीकार भाव से अशांति विसर्जित हो सकती है? 39
हम कैसे पता लगाएं कि प्रभु का आदेश क्या है? 40
जीवनसंगी -- उपहार स्वरूप या अधिकार स्वरूप? 43
प्रेम-भावना का परिष्कार कैसे हो? 45
ऐसी कौन से गुण हम सीखें कि हमारे पारिवारिक जीवन में सुख-शांति हो सके? 45
क्या प्रेम के लिए विवाह है या विवाह के लिए प्रेम है? 46
बीवी से बनाए रखने के क्या फायदे हैं? 46
दायां मस्तिष्क और बायां मस्तिष्क क्या है, यह बच्चों के सीखने और याद रखने में कैसे काम करता है? 46
जिसे हम दिल समझते रहे हैं, क्या वह दरअसल हमारा दाहिना मस्तिष्क यानी राइट ब्रेन है? 47

अंधकार या विराटता से डर क्यों लगता है? 50
इंसान जीवन भर सिर्फ कमाने के लिए दौड़ता ओर आखिर में मर जाता है तो फिर क्या मिलता है उसे? 52
"जन्म और मृत्यु में केवल सापेक्ष हैं"--ओशो के इस विचित्र से दिखने वाले वचन का अर्थ उजागर कीजिए? 52
ओशो को सिखाना तो चाहिए जीवन की कला, फिर वे मरने की बात क्यों सिखाते हैं? 53
क्या आत्महत्या करने वाले लोग साहसी होते हैं और मृत्यु से नहीं डरते? 54
मृत्यु के संबंध में हम सोचें ही क्यों? 54
क्या कोई ऐसी विधि या ध्यान का तरीका है जिससे व्यक्ति अपने अभी तक के सभी जन्मों की सम्पूर्ण यात्रा को देख/जान सके? 55
ओशो जी के जीवन और मृत्यु के प्रवचन इतने उदासीन करने वाले क्यों है? 56
क्या आत्म-सृजन के लिए विद्रोही होना उचित है? 57
ऐसा क्या करें, जीवन बिल्कुल आसान हो जाए? 57
ओशो के अनुसार "जीवन-कला" कैसी होनी चाहिए? 57
जीवन का लक्ष्य क्या है? 58
ओशो कहते हैं कि चमत्कार नहीं होते। फिर अतीन्द्रिय क्षमताएं कैसे घटित होती हैं? 58
‘विद्या वही है जो मुक्त करे’-- आधुनिक युग में इस प्राचीन उक्ति का यथार्थ रूप कैसे संभव है? 59
क्या उद्देश्य की स्पष्ट समझ के बिना एक परिपूर्ण जीवन जीना संभव है? 60
मन और आत्मा में अंतर क्या है? 60
दुनिया में सबसे जल्दी धर्म फेलने वाला कोनसा है? 60
आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत कैसे होती है ? 61
कोई कैसे जाने कि वह आध्यात्म के पथ पर अग्रसर है? 61
ईश्वर का अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है और क्या इसका विज्ञानिक प्रमाण है? 61
आंतरिक प्रकाश के रहस्य 62
अंगुलिमाल की कहानी 64
मा अमृत प्रिया जी, आपकी अमृत वाणी में एक गीत हो, जिसमें अध्यात्म का, ओशो का संदेश भी हो। 66
जितनी संपन्नता, उतनी ही अशांति 66
असली धनवान कौन? 68
विज्ञान की अग्नि में विश्वास-शून्य धर्म का जन्म 70
जीवन में बस एक बात मत टालना -- आत्मबोध 72
विकसित भारत के लिए ओशो का दृष्टिकोण 75

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड जिला:
सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

मानसिक तनाव और चिंता, एंक्जाइटी पैदा हाने के क्या कारण हैं?

हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग वजह हो सकती हैं। परस्थितिवश उत्पन्न हुए मानसिक तनाव और चिंता के सामान्य कारण इस प्रकार हैं:

काम से संबंधित तनावः नौकरी का दबाव, अधिक घंटे तक कार्य, समय सीमा, अत्यधिक काम का बोझ और सहकर्मियों के संग प्रतियोगिता।

रिश्तों में समस्याएँः परिवार के सदस्यों, दोस्तों या प्रेम-संबंधों में ईर्ष्या, संघर्ष।

धन संबंधी कठिनाइयाँः ऋण, बेरोजगारी, या वित्तीय अस्थिरता।

शैक्षणिक दबावः बड़ी उम्मीदें, परीक्षा, समय सीमा, दूसरों से तुलना।

जीवन में प्रमुख परिवर्तनः विवाह, तलाक, स्थानांतरण, प्रियजन की हानि।

स्वास्थ्य समस्याएंः गंभीर बीमारी, पुरानी बीमारी, विकलांगता।

दर्दनाक अनुभवः दुर्घटना, प्राकृतिक विपदा, हिंसा, दुर्व्यवहार।

अस्वस्थ जीवनशैलीः असम्यक आहार, व्यायाम की कमी, अपर्याप्त नींद, मादक द्रव्यों का सेवन, आधुनिक टैक्नोलौजी का अत्यधिक उपयोग।

पूर्णतावादी नजरियाः अवास्तविक मानक को पूरा करने के लिए स्वयं पर अत्यधिक दबाव डालने की आदत।

नियंत्रण की कमी और अनिश्चितताः दूसरों पर नियंत्रण की कमी महसूस करना, अनिश्चित परिस्थितियों का सामना।

महत्वाकांक्षाएः प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल उच्च आदर्श प्राप्ति का प्रयास।

अस्वीकार भावः जो भी हुआ, हो रहा है, होगा; उसके प्रति नकारात्मक रुख, अस्वीकृति।

रोजमर्रा की आपा धापी में एकाग्र रहना कैसे संभव हो पाता है?

आपाधापी में एकाग्र रहना एक महत्वपूर्ण कौशल है जो कि ध्यान, साधना और स्वास्थ्य के साथ संबंधित हो सकता है। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जो आपको आपाधापी में एकाग्र रहने में मदद कर सकते हैं:

ध्यान और प्राणायाम: ध्यान और प्राणायाम का अभ्यास करना मानसिक शांति और एकाग्रता में मदद कर सकता है। योग और मेडिटेशन के तकनीकों का पालन करके आप अपने मन को शांत और संयमित रख सकते हैं।

संयमित अभ्यास: नियमित रूप से एकाग्र अभ्यास करना महत्वपूर्ण है। आपको अपने काम में संयमित और लगनशील रहने की कोशिश करनी चाहिए।

काम के प्राथमिकताओं का पता लगाएं: आपके काम में प्राथमिकताओं को समझने से आप उन्हें सही क्रम में कर पाएंगे और एकाग्रता से काम कर सकेंगे।

समय प्रबंधन: अच्छे समय प्रबंधन से आप अपने कामों को संयमित रूप से कर सकते हैं और एकाग्रता बनाए रख सकते हैं।

मनोबल और सकारात्मकता: सकारात्मक सोच और उच्च मनोबल रखना भी एकाग्रता में मदद कर सकता है। आपके मानसिक स्थिति का संरक्षण करना महत्वपूर्ण है।

विश्राम और पूरी नींद: सही मात्रा में विश्राम और नींद लेना आपकी मानसिक स्थिति को सुधार सकता है और आपको काम में एकाग्र रहने में मदद कर सकता है।

क्षेत्रीय अनुभव: प्राकृतिक स्थलों पर जाकर, वन्यजीवों के साथ समय बिताकर, यात्रा करके, आप अपने मन को शांत और एकाग्र करने में मदद पा सकते हैं।

ध्यान दें कि एकाग्रता को प्राप्त करना एक स्थायी प्रक्रिया हो सकती है, लेकिन यदि आप उपरोक्त सुझावों का पालन करते हैं, तो आपकी मानसिक स्थिति में सुधार हो सकता है और आप एकाग्रता की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

क्या मनुष्य रोबोट जैसा व्यवहार नहीं करते?

गुरजिएफ ने लिखा है कि मेरे पिता ने मरते क्षण मुझे एक मंत्र दिया, उसी मंत्र ने मेरे पूरे जीवन को बदल दिया। चौबीस घंटेभर बाद न तो गाली का जवाब देने योग्य लगा, न गाली में कोई मूल्य मालूम पड़ा, बात ही व्यर्थ हो गई। गाली का जवाब तो तत्काल ही दिया जा सकता है। ध्यान रखना, गाली की प्रक्रिया है, उसका जवाब तत्काल दिया जा सकता है। उसमें देरी की, कि आप चूके। डेल कार्नेगी का संस्मरण कि एक स्त्री ने उसे पत्र लिखा। कहानी-मुन्ना होशियार है। वह उसको दबाकर बैठा है बच्चे को, कि अगर सौ तक गिनती हमने पढ़ी, तब तक यह निकल गया, तो मारेंगे किसको! जैसे कोई बिजली का बटन दबाता है, ऐसे ही आपके भीतर बटन दब जाते हैं। आप सुखी हो जाते हैं, दुखी हो जाते हैं। बिजली का बटन दबाने पर बिजली कह नहीं सकती कि मैं नहीं जलूंगी। मजबूर है, यंत्र है। लेकिन आप यंत्र नहीं हैं।

ओशो ऐसा क्यों कहते हैं कि प्रायश्चित से मनस्थिति नहीं बदलती?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा में था। जब ऊपर की बर्थ पर सोने लगा तो उसने नीचे के आदमी से पूछा कि मैं यह तो पूछना ही भूल गया कि आप कहां जा रहे हैं? उस नीचे के आदमी ने कहा कि मैं बम्बई जा रहा हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, गजब! विज्ञान का चमत्कार! मैं कलकत्ता जा रहा हूं, एक ही गाड़ी में हम दोनों! विज्ञान का चमत्कार देखो कि नीचे की बर्थ बम्बई जा रही है, ऊपर की बर्थ कलकत्ता जा रही है।

और मुल्ला शान से सो गया।

मुल्ला पर हमें हंसी आयेगी, लेकिन हमारी जिन्दगी ऐसी ही है; एक बर्थ बम्बई जा रही है, एक कलकत्ता जा रही है। आदमी का चमत्कार देखो। आप विरोधी काम किये चले जा रहे हैं, पूरे वक्त। बड़ा मजा यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, करीब-करीब उससे विपरीत भी कर रहे हैं। और जब तक विपरीत नहीं करते, तब तक भीतर एक बेचैनी मालूम पड़ती है। विपरीत कर लेते हैं, सब ठीक हो जाता है।

एक आदमी क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। आप आमतौर से सोचते होंगे कि पश्चात्ताप करनेवाला आदमी अच्छा आदमी है। लेकिन आपको पता नहीं, एक बर्थ कलकत्ता जा रही है, एक बम्बई जा रही है। क्रोध करता है, पश्चात्ताप करता है। फिर क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। जिंदगीभर यही चलता है। कभी आपने खयाल किया? और हमेशा सोचता, अब क्रोध न करूंगा। क्रोध करके पश्चात्ताप कर लेता है। होता क्या है? आमतौर से आदमी सोचता है, क्रोध करके पश्चात्ताप कर लिया, अच्छा ही हुआ, अब कभी क्रोध न करेंगे। लेकिन यह तो बहुत बार पहले भी हो चुका है, हर बार क्रोध किया, पश्चात्ताप किया, पश्चात्ताप से क्रोध कटता नहीं।

सचाई उल्टी है। सचाई यह है कि पश्चात्ताप से क्रोध बचता है, कटता नहीं। क्योंकि जब आप क्रोध करते हैं तो आपकी जो अपनी प्रतिमा है, अपनी आंखों में, अच्छे आदमी की, वह खण्डित हो जाती है। अरे, मैंने क्रोध किया! मैंने क्रोध किया! इतना सज्जन आदमी हूं मैं! इतना साधु चरित्र, और मैंने क्रोध किया! तो आपको जो पीड़ा अखरती है, खटकती है, अपनी प्रतिमा अपनी आंखों में गिर गयी। पश्चात्ताप करके प्रतिमा फिर अपनी जगह खड़ी हो जाती है। फिर आप सज्जन हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप कर लिया। मांग ली क्षमा, मिच्छामि दुक्कड़म, निपटारा हो गया, आदमी

फिर अच्छे हो गये। फिर अपनी जगह खड़ी हो गयी प्रतिमा। यही प्रतिमा क्रोध करने के पहले अपनी जगह खड़ी थी, क्रोध करने से गिर गयी थी। पश्चात्ताप ने फिर इसे खड़ा कर दिया। जहां यह क्रोध करने के पहले खड़ी थी, वहीं फिर खड़ी हो गयी। अब आप फिर क्रोध करेंगे, जगह आ गयी वापस, स्थान पर आ गये आप अपने।

पश्चात्ताप तरकीब है। जैसे मुग तरकीब है अण्डे की और अण्डा पैदा करने की। पश्चात्ताप तरकीब है क्रोध की, और क्रोध करने की।

अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं। अब आप फिर अपनी जगह आ गये। तो दो में से एक भी टूट जाये, फिर दूसरा नहीं टिक सकता। मुग मर जाये तो फिर अंडा नहीं हो सकता, अंडा फूट जाये तो फिर मुग नहीं हो सकती। क्रोध को तो छोड़ने की बहुत कोशिश की, अब कृपा करके इतना करो कि पश्चात्ताप ही छोड़ दो, मत करो पश्चात्ताप। रहने दो क्रोध को वहीं, तो आपकी प्रतिमा वापस खड़ी न हो पायेगी, और वही प्रतिमा खड़े होकर क्रोध करती है। लेकिन हम होशियार हैं। हम हर कृत्य से दूसरे कृत्य को बैलेंस कर लेते हैं। तराजू को हम हमेशा संभालकर रखते हैं। अच्छाई करते हैं थोड़ी, तत्काल थोड़ी बुराई कर लेते हैं। थोड़ा हंसते हैं, थोड़ा रो लेते हैं, थोड़े रोते हैं, थोड़े हंस लेते हैं। संभाले रहते हैं अपने को।

हम नटों की तरह हैं जो रस्सियों पर चल रहे हैं, पूरे वक्त संभाल रहे हैं। बायें झुकते हैं, दायें झुक जाते हैं। दायें गिरने लगते हैं, बायें झुक जाते हैं। अपने को संभाले हुए रस्सी पर खड़े हैं।

आदमी तभी पहुंचता है मंजिल तक, जब उसके जीवन की यात्रा यह इस चमत्कार से बच जाती है, कि एक बर्थ बम्बई, एक बर्थ कलकत्ता। जब आदमी एक दिशा में यात्रा करता है तो परिणाम, निष्पत्तियां, उपलब्धियां आती हैं, नहीं तो जीवन व्यर्थ हो जाता है, अपने ही हाथों व्यर्थ हो जाता है।

जिंदगी में हमेशा ऐसा क्यों लगता है कि जैसे हम किसी जेल में बंद हों?

कारागृह की छोटी सीमा होती है, सीमा ही बंधन है। कामनाएं हमारी जंजीरें हैं। पशु का अर्थ है जो पाश में बंधा है। रस्सी छोटी-बड़ी हो सकती है मगर सब पाश में हैं। हम जिसे अपना घर कहते हैं, उसकी सीमा थोड़ी बड़ी होती है। नगर की सीमा, राज्य की और देश की भी सीमा है। राष्ट्र के बाहर जाने की कोशिश करो तब पता चलता है कि सीमा आ गई। वह बड़ा कारागृह है। सीमित में स्वतंत्रता नहीं तो सुख कहां, आराम कहां?

पूर्ण स्वतंत्रता तो असीम में, विराट में, अनहद में ही हो सकती है। और वह अनहद बाहर नहीं, हमारे भीतर व्याप्त है। उसे संतों ने अनाहत नाद कहा है, परमात्मा का संगीत पुकारा है। उपनिषद के ऋषियों ने प्रणव कहा, ईसा मसीह ने शब्द या लोगोस कहा। जापान के झेन फकीरों ने एक हाथ की ताली संबोधन किया। नानक ने कहा एक ओंकार समनाम। संत दरिया साहब का प्यारा वचन है--जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम। गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम॥ राम, ओम, नाम, सतनाम आदि शब्द अनहद की तरफ ही संकेत करते हैं।

बाहरी कारागृह से स्वतंत्र होने की चाहत में तनाव, बेचैनी, असफलता एवं विषाद की मनोदशा निर्मित होती है। क्योंकि वहां स्वतंत्रता असंभव है। रस्सी बड़ी हो सकती है, समाप्त नहीं। वास्तविक स्वतंत्रता तो आंतरिक, आध्यात्मिक तल पर घटित होती है। निष्काम, फलाकांक्षारहित, वासना-मुक्त चेतना की अवस्था, जहां कोई पराया, 'पर' नहीं है, वहां परतंत्रता भी नहीं है। केवल 'स्व' शेष बचा, अनहद की गूंज से ओतप्रोत चैतन्य!

यदि पूर्व-निर्धारित हैं मनुष्य के तन-मन, तो फिर स्वतंत्रता कहाँ है?

पूर्व-निर्धारित तन-मन, किंतु स्वतंत्र चैतन्य।

हमारे जीवन पूर्व-निर्धारित होते हैं या नहीं?

हां और न दोनों--एक अर्थ में हर बात पूर्व-निर्धारित है--एक ढंग से ऐसा ही है।

तुम्हारे भीतर जो कुछ भी भौतिक है, तुम्हारे भीतर जो कुछ भी पदार्थ का है तुम्हारे भीतर जो कुछ भी मानसिक है वह पूर्व-निर्धारित है। चेतना कभी पूर्व-निर्धारित नहीं होती। यह सहजस्फूर्त मुक्त होती है। चेतना का अर्थ है स्वतंत्रता और पदार्थ का अर्थ है : परतंत्रता।

वह व्यक्ति जिसने चेतना को जान लिया है, उसने स्वतंत्रता को जान लिया है। इसलिए कोई आध्यात्मिक व्यक्ति ही कह सकता है कि कहीं भी किसी तरह का कोई पूर्व- निर्धारण नहीं है। तुम्हारा अस्तित्व एक क्रमबद्धता है नदी के समान क्रमबद्धता जिस में हर कदम अतीत के द्वारा निर्धारित होता है। मेरा जोर इस बात पर इतना अधिक रहता है सचेतन रूप से कृत्य करो। तब धीरे-धीरे जब तुम सचेतन रूप से कृत्य करते हो, तो तुम्हारे कृत्य अपने संपूर्ण संगठन को बदल देते हैं, पूरी संरचना अलग हो जाती है। तुम किसी चीज को जितनी बार दोहराओगे तुम उतने ही अधिक कार्यकुशल हो जाआगे। कृत्यों का तादातम्य चेतना के साथ भी संभव है। तब यह क्षण प्रतिक्षण घटित होता है क्योंकि चेतना एक प्रवाह है। यही कारण है कि मैंने हां और न दोनों कहा है। धर्म स्वतंत्रता देता है क्योंकि धर्म चेतना देता है। विज्ञान और-और परतंत्रता की ओर बढ़ता चला जाएगा क्योंकि विज्ञान का पदार्थ से संबंध है।

क्या मनुष्य जाति वास्तव में सभ्य है?

आपके प्रश्न पर विचार करने के पूर्व आइए, पिछली सदी के दर्दनाक इतिहास पर एक नजर डालें।

वर्ष 1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू होता है और 2018 में समाप्त होता है। इसमें केवल सवा दो करोड़ लोग मारे जाते हैं। फिर 2020 तक विश्वव्यापी महामारी, स्पैनिश फ़्लू के प्रकोप में 5 करोड़ लोग मारे गए। 2029 में भयंकर वैश्विक आर्थिक संकट, न्यूयॉर्क स्टॉक एक्सचेंज का पतन, मुद्रास्फीति, बेरोजगारी और भूखमरी का तांडव नृत्य हुआ। 2033 में नाज़ीवाद सत्ता में आया।

2039 में द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होता है और 2045 तक 6 करोड़ इंसानों का खून बहा देता है। 2052 में कोरियाई युद्ध शुरू हो जाता है। 2064 में वियतनाम युद्ध शुरू होता है जो 2075 में समाप्त होता है। जगत गुरु कहलाने वाले हमारे धार्मिक देश में 1947 में जैसा भीषण रक्तपात हुआ, वह अविस्मरणीय है। फिर 1962 में चीन का हमला, तब्बित पर चीनी कब्जा, लंबा अकाल का काल, 1965 में पाकिस्तान का आक्रमण, 1972 में बंगला देश का विभाजन। फिर इमरजेंसी के दौरान हुए सरकारी अत्याचारों का सिलसिला। 1984 में हिन्दू-सिक्ख के बीच सांप्रदायिक खून-खराबा।

जितने आदमी उपरोक्त समस्त युद्धों में जान गंवाए, उतने ही आदमी केवल सड़क दुर्घटना में अब तक जान गंवा चुके हैं। व्यक्तिगत हत्याओं, आत्म-हत्याओं की गिनती भी कम नहीं है। कितनी बड़ी गिनती में मनुष्य अपराधी और विक्षिप्त हैं। कोर्ट-कचहरी एवं पागलखानों की संख्या भी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

पिछली सदी आज तक के इतिहास की सर्वाधिक सभ्य-सुशिक्षित, वैज्ञानिक रूप से विकसित सदी रही है। अतीत में स्थितियाँ और भी बदतर थीं। प्रत्येक वर्ष धरती पर कहीं न कहीं, छोटा-बड़ा युद्ध होता ही रहा है। मारकाट ही हमारी मानव-संस्कृति की आधारशिला रही है। विगत 3 हजार साल के ज्ञात इतिहास में 5 हजार बड़ी लड़ाइयां दर्ज हैं।

क्या हम वास्तव में सभ्य, सुसंस्कृत हैं? इस सवाल का जवाब देने से पहले मनन करना होगा कि क्या हम वाकई अभी इंसान भी हुए हैं? क्या हम में आदमियत है? हम जानवरों से विकसित होकर मनुष्य बने हैं, अथवा पतित होकर? क्या डार्विन के सिद्धांत में केई भूलचूक है? ऐसी हिंसक प्रवृत्ति तो किसी पशु में नहीं दिखाई देती। सामूहिक हत्या तो खतरनाक से खतरननाक जानवर भी नहीं करते।

यदि परस्पर हिंसा ही सभ्यता और संस्कृति है, तो फिर असभ्यता और असंस्कृति की परिभाषा क्या होगी?

आपके प्रश्न के उत्तर में प्रतिप्रश्न ही उत्पन्न हो रहा है-- सभ्य होने की बात छोड़िए, क्या हमारी मनुष्य जाति वास्तव में मनुष्य है?

लोग एक दूसरे की बुराई क्यों करते हैं?

तुम देखना चाहते हो दूसरों में बुराई ताकि उनको छोटा कर सको। ताकि बड़े मालूम हो सको। यह अभी तक तथाकथित धार्मिकों की प्रक्रिया रही। जाओ किसी साधु के पास, तथाकथित महात्मा के पास और वह तुम्हें ऐसे देखता है जैसे तुम नारकीय कीड़े हो। तुम्हारे महात्मा, पंडित, पुरोहित यही तुम्हें समझाते हैं।

यह बड़ी मजेदार दुनिया है। और तुम उनका सत्कार करते हो और उनके चरण छूते हो और वह तुम्हें यही समझाते हैं कि हे नरक के कीड़ो! वह नरक का ऐसा वर्णन कर देते हैं, ऐसा रंगीन वर्णन कि आग की लपटें और कड़ाहे चढ़े हुए हैं--हमेशा ही चढ़े रहते हैं। दुनिया में इतनी तेल की कमी है, नरक के कड़ाहे अभी भी चढ़े हुए हैं। और कड़ाहों में जलाए जाओगे और चुराए जाओगे। आदमी न हुआ कोई पकौड़ा हुआ! और एक-से-एक कष्ट देने की उन्होंने ईजादें की हैं।

जिंदगी को उसकी पूरी पृष्ठभूमि में जब लो, तो अर्थ कुछ और हो जाते हैं। प्रसंग के बाहर तोड़ लेते हो। जिस आदमी ने कुछ बुरा काम किया है, उसकी तुम्हें पूरी जिंदगी पता नहीं है। शायद वैसी ही जिंदगी तुम्हें भी मिली होती, शायद तुम्हें भी वैसे ही मां-बाप मिले होते, वैसा ही स्कूल मिला होता, वैसे ही अध्यापक मिले होते, वैसा ही गांव मिला होता, वैसे ही संगी-साथी परिवार मिला होता, तो शायद तुमने भी यही किया होता जो उसने किया है। तो शायद तुम भी इससे भिन्न नहीं कर पाते। क्योंकि वह भी मूर्च्छित है, तुम भी मूर्च्छित हो। होशवाला परिस्थिति से मुक्त हो सकता है; लेकिन मूर्च्छित व्यक्ति तो परिस्थिति का शिकार होता है।

स्रोतः उपरोक्त प्रवचनांश ओशो साहित्य से लिया गया है।

निंदात्मक नजरिये से कैसे मुक्ति मिले क्योंकि मुझे सदैव उदासी घेरे रहती है?

एक बार ओशो से किसी ने पूछा कि मैं हमेशा दूसरों में बुराइयां तलाशता रहता हूं। इस बुरी आदत से कैसे छुटकारा पाऊं? उन्होंने उत्तर देने के पूर्व यह कथा सुनाई--

सूफी फकीर फरीद से किसी ने कहा कि मैं कैसे अपनी बुरी आदतों को छोडूं? उन्होंने मुझे बिल्कुल जकड़ लिया है। फरीद ने उसकी बात सुनी, उसको तो उत्तर नहीं दिया, उठकर खड़ा हुआ, पास में ही एक खंबा था, खंबे को पकड़कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा कि बचाओ, बचाओ, छुड़ाओ, छुड़ाओ!

वह आदमी तो एकदम हैरान हो गया। बेचारा जिज्ञासु, आध्यात्मिक प्रश्न पूछने आया था और यह कोई पागल मालूम होता है! सामने आंख के सामने खंबे को पकड़ लिया है। उसने कहा कि मैं तो सोचता था कि आप ज्ञानी हैं, आप तो विक्षिप्त मालूम होते हैं।

फरीद ने कहा, ये बातें पीछे होंगी, पहले मुझे बचाओ! पहले मुझे छुड़ाओ! उस आदमी ने कहा, छुड़ाने की कोई जरूरत ही नहीं है, खंबा तुम पकड़े हो, खंबा तुम्हें नहीं पकड़े है।

फरीद ने कहा, फिर तो तू होशियार है। फिर तू मुझसे क्या पूछने आया है? आदतें तुझे नहीं पकड़े हैं, तूने आदतों को पकड़ा है। रास्ते पर लग! अगर तुझे इतनी अक्ल है कि मुझे बता सकता है कि खंबा मुझे नहीं पकड़े है, तो कौन तुझे पकड़े है? तुम्हारी आदत में कुछ न्यस्त स्वार्थ होगा, उसे देख लो।

उपरोक्त प्रेरक प्रसंग सुनाकर ओशो समझाते हैं कि समय थोड़ा है! व्यर्थ की चिंताओं में मत पड़ो, इस थोड़े समय में अपने पत्थर को निखारना है और हीरा बनाना है। सारी ऊर्जा उस पर लगाओ! विचार से मुक्त होना है और ध्यान में गति करनी है। प्रेम को भक्ति में रूपांतरित करना है। देह को आधारभूमि बनाना है। ताकि छलांग लग सके परमात्मा में।

इन बहुमूल्य क्षणों को तुम क्यों दूसरों की चिंता में व्यतीत कर रहे हो? छोड़ो यह आदत! आदत पुरानी है, छूटते-छूटते ही छूटेगी, मगर अगर होश रखा तो निश्चित छूट जाएगी। ऐसी कौन आदत है जो न छूट जाए? हम ही

पकड़ते हैं तो पकड़ जाती है, हम ही छोड़ते हैं तो छूट जाती है। कोई आदत हमें नहीं पकड़ती। मगर हम अजीब लोग हैं, हम कहते हैं, कैसे छोड़ें, आदत ने पकड़ लिया है। आदत क्या तुम्हें खाकर पकड़ेगी!

तुम देखना चाहते हो दूसरों में बुराई ताकि उनको छोटा कर सको। ताकि बड़े मालूम हो सको। यह अभी तक तथाकथित धार्मिकों की प्रक्रिया रही। जाओ किसी साधु के पास, तथाकथित महात्मा के पास और वह तुम्हें ऐसे देखता है जैसे तुम नारकीय कीड़े हो। तुम्हारे महात्मा, पंडित, पुरोहित यही तुम्हें समझाते हैं। यह बड़ी मजेदार दुनिया है। और तुम उनका सत्कार करते हो और उनके चरण छूते हो और वह तुम्हें यही समझाते हैं कि हे नरक के कीड़ो! वह नरक का ऐसा वर्णन कर देते हैं, ऐसा रंगीन वर्णन कि आग की लपटें और कड़ाहे चढ़े हुए हैं--हमेशा ही चढ़े रहते हैं। दुनिया में इतनी तेल की कमी है, नरक के कड़ाहे अभी भी चढ़े हुए हैं। और कड़ाहों में जलाए जाओगे और चुराए जाओगे। आदमी न हुआ कोई पकौड़ा हुआ! और एक-से-एक कष्ट देने की उन्होंने ईजादें की हैं।

जिंदगी को उसकी पूरी पृष्ठभूमि में जब लो, तो अर्थ कुछ और हो जाते हैं। प्रसंग के बाहर तोड़ लेते हो। जिस आदमी ने कुछ बुरा काम किया है, उसकी तुम्हें पूरी जिंदगी पता नहीं है। शायद वैसी ही जिंदगी तुम्हें भी मिली होती, शायद तुम्हें भी वैसे ही मां-बाप मिले होते, वैसा ही स्कूल मिला होता, वैसे ही अध्यापक मिले होते, वैसा ही गांव मिला होता, वैसे ही संगी-साथी परिवार मिला होता, तो शायद तुमने भी यही किया होता जो उसने किया है। तो शायद तुम भी इससे भिन्न नहीं कर पाते। क्योंकि वह भी मूर्च्छित है, तुम भी मूर्च्छित हो। होशवाला परिस्थिति से मुक्त हो सकता है; लेकिन मूर्च्छित व्यक्ति तो परिस्थिति का शिकार होता है।

तुम दूसरों में बुराइयां तलाशने के आदी रहे हो। पूछते हो कि इस बुरी आदत से कैसे छुटकारा पाउं? अब अपने में भी बुराई खोज ली। वही पुरानी आदत! बस, इतना स्मरण रखो कि आदत ने तुम्हें नहीं जकड़ा, तुमने आदत को पकड़ा है। इसलिए स्वतंत्र हो, जब होश आ जाए, छोड़ दो। कैसे का सवाल ही नहीं उठता। निंदात्मक नजरिये से, निगेटिव आलोचनात्मक दृष्टिकोण से उदासी घेरे रहती है। बस, समझ पर्याप्त है। मत पूछो--कैसे मुक्ति हो? प्रसंशात्मक नजरिये और पॉजीटिव दृष्टिकोण से जीना आरंभ कर दो। तत्क्षण खुशी की बरसात होने लगेगी। कौन रोक रहा है? अपनी स्वतंत्रता को पहचानो, उसका मूल्य जानो, उसका सदुपयोग करो।

किस तरह की मनुष्य लालची और मतलबी किस्म के होते हैं?

लालची और मतलबी दो भावनाएँ हैं जो मानव व्यक्ति की व्यवहारिकता और चरित्र को व्यक्त करती हैं:

लालची (Greedy): लालची व्यक्ति वह होता है जो अत्यधिक चाहता है, जैसे कि धन, संपत्ति, सुख, या अन्य वस्तुएं, और वह अपने इच्छाओं की पूर्ति के लिए आत्मा और आत्महित को भूल जाता है। लालचीता बड़े ही दुष्ट और असामग्री दृष्टिकोण को दर्शाती है, और यह व्यक्ति के समाज में अच्छे रिश्तों को भी प्रभावित कर सकती है।

मतलबी (Selfish): मतलबी व्यक्ति वह होता है जो अपने लाभ की प्राथमिकता रखता है और अकेले अपने हितों का ध्यान रखता है, बिना दूसरों की भलाई और आवश्यकताओं को सोचे। यह व्यक्ति अक्सर सामाजिक मानवीय मूल्यों को नजरअंदाज करके अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कठोरता से काम करता है।

लालची और मतलबीता के दृष्टिकोण व्यक्ति की नैतिकता और सामाजिक बराबरी में बाधाएं डाल सकते हैं, क्योंकि यह दूसरों के साथ सहयोग और सहयोग की भावना को कम कर सकते हैं। सच्चाई यह है कि एक समृद्धि और सफलता की प्राप्ति के लिए कुछ मात्रा में लालची और मतलबीता आवश्यक हो सकती है, लेकिन इन गुणों की अत्यधिकता नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है।

आदर्श मनुष्य को होना चाहिए जो आत्मा-संतोष, सहयोगिता, और सामाजिक सद्भावना के साथ जीता है, ताकि वह स्वयं को न केवल सार्वभौमिक हित में सहायक साबित कर सके, बल्कि अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में

भी एक सकारात्मक प्रभाव डाल सके। इस संदर्भ में विस्तार से समझने के लिए ओशो की किताब "करुणा और क्रांति" पढ़िए

क्यों लोग अपने आप को ही समझदार समझते हैं?

आप सलाह दो, कोई नहीं लेगा। इतना ही नहीं, भगवान भी दे तो इंसान नहीं लेता।

"कस्तूरी कुंडल बसै" किताब के दसवें प्रवचन में कबीर साहब के एक वचन को समझाते हुए ओशो ने इसका कारण बताया कि अरब में कहावत है कि जब भी ईश्वर किसी को बनाकर संसार में भेजता है तो उसके कान में यह कह देता है कि तुझसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। मगर सभी से वह यही कह देता है। और हर आदमी इसी खयाल में भटकता है। यह एक गहरी मजाक है; और परमात्मा करता है, इससे दुनिया में रस है।

और परमात्मा मजाक कर सकता है, यह बात मुझे बड़ा सुख देती है। क्योंकि मैं किसी गुरु-गंभीर परमात्मा में भरोसा नहीं करता। परमात्मा गुरु-गंभीर होता तो संसार हो ही नहीं सकता। परमात्मा निश्चित ही हल्का और प्रसन्न, प्रफुल्ल, उत्सव--ऐसा कुछ है।

जिस दिन तुम जागोगे, और जिस दिन तुम्हारी यह भ्रांति छूट जाएगी। तुम समझ लोगे मजाक को--उसी दिन तुम विनम्र होकर झुक जाओगे। भेंट तैयार है; जन्मों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। तुम्हारा झुकना भर काफी है। तुम लेने भर के लिए राजी हो जाओ, देने वाला सदा से राजी है।

इस जिंदगी में उलटा हो रहा है, यहां मांगनेवाला तैयार है, दाता कोई भी नहीं। उस दुनिया में ठीक इससे उलटा है। वहां दाता तैयार है, लेनेवाला कोई नहीं। बस तुम अपनी झोली फैला दो। तुम अपने हृदय को खोल कर रख दो, और कह दो परमात्मा से जो तेरी मरजी। जैसे तू रखे, वैसा रहेंगे। जैसा तू चलाए, वैसा चलेंगे। जैसा तू बनाए, वैसा बनेंगे। कबीर कहते हैं, जब तुम ऐसी हालत में आ जाओगे तो क्या घटेगा?

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर।

चहुं दिसि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर॥

फिर सारा आकाश अमृत बरसाने लगता है। जब तुम राजी हो लेने को, तो दाता के अनंत हाथ हैं। इसलिए तो हम परमात्मा के बहुत हाथ बनाते हैं; क्योंकि दो हाथ से देना भी क्या देना होगा? और परमात्मा दो हाथ से दे, बड़ा कृपण मालूम पड़ेगा। इसलिए हम अनंत हाथ बनाते हैं। जब वह देता है तो अनंत हाथों से देता है।

गगन गरजि बरसै अमी--सारा गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है। बादल गहन अमृत को लेकर घने हो गए हैं। चारों तरफ बिजली चमक रही है। चारों तरफ रोशनी ही रोशनी का सागर है। और भीजै दास कबीर और दास कबीर इस अमृत में नाच रहा है। भीग रहा है; इस अमृत को भी पी रहा है; इस अमृत के साथ एक होता जा रहा है।

गगन सदा तैयार है गरजने को, बरसने को। बादल सदा से तुम्हारे सिर पर मंडराते रहे हैं; बिजलियां चमकने को बिलकुल तत्पर खड़ी हैं; मगर आपका अहंकार राजी नहीं है।

क्या संकोच शील प्रकृति भी अहंकार का ही एक रूप है?

संकोची भी घमंडी है

एक रूप है अहंकार का कि हम को जो ठीक लगता है हम कहेंगे, हम वैसा करेंगे। इसकी जिद।

इसका विपरीत वह भी अहंकार का रूप है मैंने कहा था कि हम अपनी बात को बिल्कुल छुपा लेंगे। कहेंगे नहीं, बोलेंगे नही। यह भी अहंकार का ही रूप है।

सामान्यतः एक से तो हम सभी परिचित होते है। कोई बार बार बता रहा है, सिद्ध कर रहा है कि मैं महान हूं, मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं तुमसे अच्छा हूँ। वह सबको समझ में आता है कि बहुत घमंडी है, अभिमानी हैं। एक दूसरा व्यक्ति जो अपने आप को बहुत विनम्र बता रहा है कि मैं तो कुछ भी नही। आई एम नो बॉडी। आपके चरणों की धूल हूँ। यह समझ में नहीं आता कि यह अहंकार ही है, यह भी अहंकार ही है। एक बार ओशो के पास कोई आया था। कहने लगा आपके चरणों की धूल हूँ। ओशो ने कहा वो तो दिख ही रहा है, शकल से ही दिख रहा है। बहुत भड़क गया वो। ओशो ने कहा मैंने तो कुछ कहा ही नहीं, तुम्हीं ने कहा। मैंने तो हां में हां मिलाई तुम्हारी। अगर यह अहंकार नहीं होता तो भड़क क्यों गए फिर? वो चाह क्या रहे हैं, जो कह रहे हैं कि हम आपके चरणों की धूल हूँ। वो कह रहे है, नही नही। दूसरा उनके अहंकार को सपोर्ट करें कि नहीं आप तो बहुत महान हैं। एक परस्पर एक खेल चल रहा है अहंकार की सपोर्ट का। आप हमारी इज्जत रखो हम आपकी इज्जत रखेंगे। एक खेल है अहंकार का मैंने यह समझाया था। आपने जो किया वह कुछ और ही था।

आपने अपने मित्रों के बीच बातें कह दीं, जो आपको नहीं कहनी चाहिए थी और मित्र छूट गए। खूब अच्छे से स्मरण रखें आप ऑथेंटिक अपने भीतर हो सकते हैं। जब मैं प्रामाणिकता की बात करता हूं, ईमानदार आप स्वयं के भीतर हो सकते हैं। जिस समाज में हम जी रहे हैं इसकी संरचना झूठ पर है। यहां पर अगर आप प्रामाणिक होंगे दूसरों के संग, तो सारे संबंध नष्ट हो जाएंगे। तीन चार छुटे हैं और आपने इसको जारी रखा तो एक भी व्यक्ति नहीं बचेगा। अगर सारे दुनिया के लोग तय कर लें सिर्फ पाँच मिनट के लिए बिल्कुल सच बोलेंगे। पाँच मिनट के लिए पूरी दुनिया एक साथ। इतने बजे से इतने बजे तक सब लोग सारी दुनिया में सच बोलेंगे। कोई भी किसी का मित्र, कोई किसी का दोस्त, कोई किसी की पत्नी है, कोई किसी का पति कोई कुछ नहीं बचेगा। सब खत्म हो जाएंगे। सारे संबंध नष्ट हो जाएंगे पाँच मिनट के अंदर। जब हम कहते हैं प्रामाणिक! अर्थात अपने भीतर तुम तो कम से कम, जानो कि तुम्हारी वस्तु स्थिति क्या है। तुम्हें भीतर क्रोध आ रहा है। मैं नहीं कह रहा कि आप अपने क्रोध को अभिव्यक्त कर दो।

यह आपका प्रॉब्लम है दूसरे का प्रॉब्लम नहीं है। आप मूर्छा में हों इसलिए क्रोध आ रहा है। आप इसको सुलझाने का अपना उपाय करना। दूसरे पर व्यक्त करने से इसका कोई मसला हल नहीं होगा। दूसरा भी क्रोधित होगा। फिर आप और भड़केंगे, फिर आप कुछ कहेंगे करेंगे। फिर वो सामने वाला कुछ और उल्टा प्रतिक्रिया करेगा। मामला आगे बढ़ता चला जाएगा। इससे कोई समस्या हल होने वाली नहीं और अगर आपने अपने भीतर दबाया, तो भी समस्या हल होने वाली नहीं। वह आपके भीतर घाव बनकर बैठ जाएगा।

उपाय यह है कि आप अपने एकांत में हो सके तो एक साउंड प्रूफ कमरा बनवा लेना। डायनेमिक मेडिटेशन कर लेना और क्रोध को निकाल बाहर करना। शांत लेट जाना, ध्यानस्थ हो जाना। होश पूर्ण अवस्था में जब आप बाहर आओगे, तब आपकी स्थिति ठीक होगी। प्रामाणिक अपने साथ रहो, यह मैं कह रहा हूं। आपके अंदर क्रोध है कम से कम आप तो जानो कि क्रोध है। दूसरों के साथ संबंध जो है। आपकी झूठी मुस्कुराहट का है उसको वैसा ही रहने दीजिए। वहां पर आप प्रामाणिक मत होईये। जरा आप दूसरी तरफ से सोचो, क्या आप तैयार हो? अन्य लोग आपके साथ प्रामाणिक हो? क्या आप उसे सहन कर सकोगे? सब लोग वही कहने लगे जो वह कहना चाहते है? वही करने लगे जो करना चाहते है? पांच मिनट के अंदर सारे संबंध हंड्रेड परसेंट, सब खत्म हो जाएंगे। तो जहां प्रामाणिकता की बात आती है वह अपने भीतर की है। अगर मेरे अंदर घृणा है, नफरत है, द्वेष है, ईर्ष्या है। कम से कम मैं तो इसको जानू, जैसा है वैसा। ताकि इस बीमारी का कुछ उपचार किया जा सके।

मैं नहीं कह रहा कि आपकी बीमारी है तो आप सबको बांटते फिरो। आपको सर्दी जुकाम खांसी भी हो जाता तो आप मुंह रुमाल रखकर खाँसते हो। यह सामान्य एटिकेट्स की बात है। आपको इंफेक्शन हुआ है। आप क्यों डिस्ट्रीब्यूट कर रहे हैं कीटाणु और इससे कोई मामला हल नहीं होगा। आप पच्चीस लोगों के बीच में बैठकर खासोगे।

करीब चार पाँच मीटर दूर तक छींक में कीटाणु जाते हैं। पाँच मीटर बहुत होता है। आप जिस कमरे में भी उसके कोने कोने तक उसके कीटाणु चले जाते हैं एक छींक में। सारे लोग इन्फेक्टेड हो जाएंगे। क्या इससे आपकी सर्दी ठीक हो जाएगी?

नहीं, अब आपकी चांस और बढ़ गई। जब आपकी ठीक होने का समय आया था, तब तक दूसरे लोगों को गई। फिर उनके बाद तीसरे लोगों को गई। चौथे लोगों को गई और तब तक आपका इम्युनिटी पीरियड खत्म हो गया। फिर आपको फिर उनसे कीटाणु लग जाएंगे। इससे मामला हल नहीं होगा। हम एक सामान्य सा एटीकेट बरतते हैं खांसी छींक आने पर। मुंह उठाकर रूमाल रखकर खाँसते है छींकते है।

दूसरों को इन्फेक्शन क्यों फैलाना। यही बात आप अपने मानसिक रोगों के बारे में याद रखिए। अगर हम क्रोध को व्यक्त करते हैं तो क्रोध फैलता है बढ़ता है। आप जिस पर क्रोधित हो गए फिर वो आप पर क्रोधित होगा। सिर्फ आप पर नहीं और भी अन्य लोगों को क्रोधित होगा। अभी वो गुस्से में उबल रहा है। जो भी उसके आमने सामने आ जाएंगे उन्हीं पर वह नाराज हो जाएगा। चार पाँच गुना हो गया क्रोध या फिर लौट लौट कर आएगा। फिर सब जगह से प्रतिक्रियाएं होंगी। इससे कोई मामला तो हल नहीं होगा।

इसको बिल्कुल कीटाणु की तरह ही समझें। मुझको बीमारी है तो मुझे अपना इसका उपचार जरूर करना है। मैं प्रामाणिक हूं कि मुझे तकलीफ है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं दूसरों को बांटता फिरूं। उसके डिस्ट्रीब्यूटर डीलर मत बन जाइए। यह प्रामाणिक होने का अर्थ है। तो अहंकार और जिसको संकोच शील प्रवृत्ति कहते हैं, विनम्रता कहते हैं, वे एक ही चीज के दो रूप है। उनमें भिन्नता नहीं है और दोनों ही प्रकार से उस बिमारी से हम मुक्त नहीं होते।

क्या अशुभ की रचना भी प्रभु की मर्जी से हुई है?

अशुभ की रचना के संबंध में एक प्रेरक कथा के माध्यम से ओशो ने बहुत सुगतापूर्वक समझाया है।

एक दिन कॉलेज में प्रोफेसर मैडम ने विद्यर्थियों से पूछा कि इस संसार में जो कुछ भी है उसे भगवान ने ही बनाया है न?

सभी ने कहा, हाँ, भगवान ने ही बनाया है।

प्रोफेसर बोली कि इसका मतलब ये हुआ कि बुराई भी भगवान की बनायी हुई चीज़ ही है?

एक विद्यार्थी उठ खड़ा हुआ और उसने कहा कि इतनी जल्दी इस निष्कर्ष पर मत पहुँचिये मैडम।

प्रोफेसर ने पूछा, क्यों? अभी तो सबने कहा है कि सब कुछ भगवान का ही बनाया हुआ है फिर तुम ऐसा क्यों कह रहे हो?

विद्यार्थी ने कहा कि मैडम, मैं आपसे छोटे-छोटे दो सवाल पूछूँगा। फिर उसके बाद आपकी बात भी मान लूँगा।

प्रोफेसर बोली, चलो पूछो।

विद्यार्थी ने पूछा, मैडम क्या दुनिया में ठण्ड का कोई वज़ूद है?

प्रोफेसर ने कहा, बिल्कुल है। सौ फीसदी है। हम ठण्ड को महसूस करते हैं।

विद्यार्थी बोला, नहीं मैडम, ठण्ड कुछ है ही नहीं। ये असल में गर्मी की अनुपस्थिति का अहसास भर है। जहाँ गर्मी नहीं होती, वहाँ हम ठण्ड को महसूस करते हैं।

प्रोफेसर चुप रही।

विद्यार्थी ने फिर पूछा, मैडम, क्या अंधेरे का कोई अस्तित्व है?

प्रोफेसर ने कहा, बिल्कुल है। रात को अन्धेरा होता है।

विद्यार्थी ने कहा, नहीं मैडम, अंधेरा कुछ होता ही नहीं। ये तो जहाँ रोशनी नहीं होती वहाँ अन्धेरा प्रतीत होता है।

प्रोफेसर ने कहा, ठीक है, अपनी बात आगे बढ़ाओ।

विद्यार्थी ने फिर कहा, मैडम, आप हमें भौतिक शास्त्र की कक्षा में सिर्फ प्रकाश और ताप ही पढ़ाती हैं। आप हमें कभी अंधेरा और ठण्ड का अध्याय नहीं पढ़ातीं। फिजिक्स में ऐसा कोई विषय ही नहीं है। मैडम, ठीक इसी तरह ईश्वर ने सिर्फ शुभ बनाया है। किंतु जहाँ अच्छा नहीं होता, वहाँ हमें बुराई नज़र आती है। अशुभ को ईश्वर ने नहीं बनाया। यह सिर्फ शुभता की अनुपस्थिति भर है। वस्तुतः जगत में सत्यं शिवं सुंदरं ही है। उसकी छाया, उसकी अनुपस्थिति या उसकी मात्रा में कमी हमें असत्य, अशिव, असुंदर जैसी भासती है। वह छाया-अस्तित्व जैसी भ्रांति है। बुराई केवल शैडो एग्जिस्टैंस है। सचमुच में उसकी कोई सत्ता नहीं है।

पाँच मानसिक वृत्तियाँ क्या हैं, और इनसे कैसे मुक्ति मिलती है?

भारतीय दर्शनिक कणाद के अनुसार ज्ञान-प्राप्ति के स्रोतों में पाँच वृत्तियाँ प्रमुख हैंः प्रमाणवृत्ति, विपर्ययवृत्ति, विकल्पवृत्ति, स्मृतिवृत्ति और निद्रावृत्ति; जिनसे हमें बाहरी जगत के संबंध में जानकारी मिलती है। महर्षि पतंजलि ने भी योगशास्त्र में इनका उल्लेख किया है।

प्रमाणवृत्तिः इसमें सत्य ज्ञान की प्राप्ति प्रत्यक्ष प्रमाण या परोक्ष अनुमान से होती है।

विपर्ययवृत्तिः इसमें असत्य ज्ञान की प्राप्ति अप्रमाणिक स्रोतों द्वारा होती है, जैसे भ्रम या गलत अनुमान।

विकल्पवृत्तिः इसमें अनिश्चित ज्ञान की प्राप्ति कल्पना या परिकल्पना के माध्यम से होती है।

स्मृतिवृत्तिः इसमें अनिश्चित ज्ञान की प्राप्ति स्मृतियों या संस्कारों के माध्यम से होती है।

निद्रावृत्तिः इसमें अनिश्चित ज्ञान की प्राप्ति सपनों के माध्यम से होती है।

उपरोक्त पाँच वृत्तियों की वजह से हमारी चेतना दिन-रात संसार के वस्तुगत-ज्ञान (आब्जेटिव-नॉलेज) में व्यस्त रहती है। गहरी स्वप्न रहित नींद अर्थात सुषुप्ति में बेहोश हो जाती है। वस्तुगत-ज्ञान के विषयों से मुक्त होती है, किंतु अचेत हो जाती है।

ध्यान के द्वारा हम चेतना की ऐसी अवस्था में होने का प्रयास करते हैं जहां वस्तुगत-ज्ञान न हो, किंतु हम परिपूर्ण रूप से सचेत हों। तब आत्मगत-ज्ञान घटित होता है। स्वयं को स्वयं के होने का अहसास होता है। इसे निर्विषय ज्ञान अथवा स्व-बोध (सब्जेटिव-नॉलेज) भी कह सकते हैं। जानने वाला ज्ञाता चैतन्य खुद को जानता है।

आब्जेटिव-नॉलेज पर-ज्ञान है। सब्जेटिव-नॉलेज स्व-ज्ञान है। विषय-ज्ञान के अभाव में सजगता रहने पर निर्विषय ज्ञान फलित होता है। जैसे मेहमानों की भीड़ विदा हो गई, और सूने एंकांत घर में मेजबान ने खुद के होने की अनुभूति की।

विषय रूपी मेहमानों से दूर हटने की प्रक्रिया को प्रत्याहार या प्रतिक्रमण कहा जाता है। थोड़ी देर के लिए पांचों प्रकार के ज्ञान को छोड़ दें। वर्तमान के क्षण में जागरूक बने रहें। आत्मिक ध्यान की दशा अथवा सामायिक अपने-आप घटित होती है।

अनात्म यानी जो मैं नहीं हूं--उसकी याद से छुटकारा तभी संभव है जब उसकी निरर्थकता समझ आती है। आत्म यानी जो मैं हूं--उसकी याद तभी आती है जब उसकी सार्थकता समझ आती है। अनात्म-स्मरण छूटता है तो आत्म-स्मरण घटता है।

पांच वृत्तियों से चेतना को मुक्त जानने की विधि क्रमिक ढंग से निम्नानुसार है--

1. संसार की घटनाओं से प्रतिक्रमण करें। इनसे अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

2. अपने शरीर एवं श्वास को बारी-बारी से देखें। इनसे अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

3. अपनी प्रमाणवृत्ति (कान के द्वारा संगीत सुनें) से अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

4. अपनी विपर्ययवृत्ति (भ्रम, जैसे कि मैं शरीर हूं) से अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

5. विकल्पवृत्ति (कोई कल्पना) से अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

6. स्मृतिवृति (अतीत की किसी घटना का स्मरण) से अलग अपनी सत्ता को महसूस करें।

7. शांत, शिथिल हो जाएं। ख्याल रखें यदि नींद घेर ले, सपने आने लगें तो भी उन्हें निरर्थक जानना, वे विदा हो जाएंगे।

8. अब केवल अपने निराकार निर्विषय स्वरूप को देखें। यही ज्ञाता स्वरूप चैतन्य आत्मा है। इस सब्जेक्टिव इंटैलीजेंस से तादात्म्य बनाएं। समाधि में प्रवेश करें।

मनुष्य की प्रमुख कामनाएं कौन-कौन सी हैं?

मुख्य कामनाएं व्यक्ति की खुशहाली, समृद्धि, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि समान्य जीवन के प्रमुख आधार स्तंभ मानी जाती हैं। कामनाएं व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न हो सकती हैं। हर व्यक्ति की अपनी-अपनी प्राथमिकताएं होती हैं। समय अनुसार कामनाएं भी बदलती रहती हैं। नीचे कुछ मुख्य कामनाएं दी गई हैं:

आजीविका: भोजन, पानी, निवास और सुरक्षा जैसी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने की मूल इच्छा।

सुरक्षा: हमारे भीतर भय का तत्व है जो हमें निरंतर सुरक्षा की खोज में संलग्न रखता है।

स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं शारीरिक सुख: शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की चाहत, ताकि ऊर्जा और आनंद में बढ़ोतरी हो।

धन-संपत्ति: अर्थोपार्जन, संपत्ति, स्थिरता, आवास, और सुविधापूर्ण जिंदगी की कामना। भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति और संग्रह की इच्छा जो जीवनशैली को उन्नत करती हैं।

हृदयपूर्ण भावनात्मक रिश्ते: स्नेह, वात्सल्य, ममता, प्यार, रोमांटिक रिश्ते, साहचर्य, अंतरंगता, पारिवारिक प्रेम, दोस्ती, आदर, सम्मान, अच्छे सामाजिक संबंध, भाईचारा और संघर्ष रहित जीवन, समुदाय और संगठनों के साथ मेल-जोल, सहयोग और समर्पण।

सदभानाओं का विकास: सकारात्मक भावनाओं और सद्गुणों की चाहत, चरित्र निर्माण और भावनात्मक उन्नति, धैर्य, समर्पण, श्रम, न्याय, दया, धैर्य, और समर्पण।

मानसिक आवश्यकताएं: ज्ञान प्राप्ति, शिक्षा और विकास की कामना मानव जीवन में महत्वपूर्ण है। स्वयं को समृद्ध करने, नए कौशल और ज्ञान का आदान-प्रदान करने की चाहत, तथा मनोरंजन भी मानवीय जरूरत हैं।

उपलब्धि और सफलता: लक्ष्यों को पूरा करने, व्यक्तिगत विकास करने और करियर, शिक्षा, खेल या रचनात्मक क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त करने की इच्छा।

स्वायत्तता और स्वतंत्रता: जीवन में विकल्पों पर नियंत्रण और स्वयं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने की क्षमता।

प्रतिष्ठा: किसी की उपलब्धियों या योगदान के लिए दूसरों से स्वीकृति, प्रशंसा और मान्यता की इच्छा।

साहसिक कार्य और अन्वेषण: नए अनुभवों, नवीनता की इच्छा, और उत्साह और खोज की खोज।

आत्म-अभिव्यक्ति: स्वयं को कलात्मक, बौद्धिक या रचनात्मक रूपों के माध्यम से व्यक्त करने की इच्छा।

आंतरिक शांति: आध्यात्मिक तृप्ति का उद्देश्य, स्वयं से बड़ी किसी चीज़ से जुड़ाव और आंतरिक सद्भाव की कामना।

जीवन का सार -- कामना है असार

संसार में ऐसी कई चीजें हैं जिन्हें भरने के लिए इंसान सारी जिंदगी भाग दौड करता है पर उसे भर नहीं पाता है। यह एक व्यापक सवाल है जिसका उत्तर व्यक्ति के निर्देशानुसार भिन्न हो सकता है, लेकिन कुछ सामान्य उदाहरण निम्नलिखित हो सकते हैं:

1. संबंधों की खामियों को भरना: इंसान अक्सर अपने संबंधों को अच्छे से नहीं बना पाता है, चाहे वह परिवार, मित्र, साथी या समुदाय के संबंध हों। यह आमतौर पर समय की कमी, संघर्ष, अवसरों की कमी, विश्वास की कमी या अन्य कारणों के कारण हो सकता है।

2. सपनों को पूरा नहीं कर पाना: अक्सर लोग अपने सपनों को पूरा करने के लिए प्रयास करते हैं, लेकिन कई बार उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल नहीं हो पाते हैं। यह विभिन्न कारणों पर निर्भर कर सकता है, जैसे कि अवसरों की कमी, संघर्ष, निराशा, अधिकारी या सामाजिक प्रतिबंधनों की वजह से।

3. संतुष्टि की कमी: अक्सर लोग अपनी जीवन में संतुष्टि नहीं पा सकते हैं, चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक या मानसिक संतुष्टि हो। यह आमतौर पर अपनी अपेक्षाओं के अनुरूप जीने की क्षमता की कमी, अवसरों की कमी, निराशा, अधिकारी या सामाजिक प्रतिबंधनों की वजह से हो सकता है।

4. ज्ञान और समय की कमी: अक्सर लोग अपनी जिंदगी में ज्ञान और समय की कमी के कारण अपने उद्देश्यों तक पहुंचने में असमर्थ होते हैं। यह आमतौर पर शिक्षा, अनुभव, संघर्ष, विश्वास की कमी, अवसरों की कमी या अन्य कारणों के कारण हो सकता है।

यह सभी उदाहरण अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन इनमें से किसी एक कारण के बारे में विचार करके इंसान अपनी जिंदगी में इस प्रश्न का उत्तर खोज सकता है।

क्या नियति की धारणा वैज्ञानिक कसौटी पर सही है?

क्या हमें चुनाव की स्वतंत्रता है अथवा सब पूर्वनियत है? और क्या भूतकाल और भविष्य सदा मौजूद हैं? ये दोनों जिज्ञासाएं, गहरी दार्शनिक और वैज्ञानिक चिंतना के क्षेत्र हैं, जिसे रिलेटिविटी और क्वांटम मैकेनिक्स की अवधारणाओं को एक साथ मिलाकर देखना जरूरी है।

आइंस्टीन के विशेष सापेक्षतावाद सिद्धांत के अनुसार, हमारे लिए वर्तमान घटनाएं दूरस्थ अनुदर्शकों के लिए पहले ही गुजर चुकी होती हैं। इसका मतलब है कि सभी घटनाएं, समय की शुरुआत से लेकर ब्रह्मांड के अंत तक, ब्रह्मांड को समझने के लिए समय-समय पर एक साथ मौजूद होनी चाहिए। यह धारणा, अंड्रोमेडा पैराडॉक्स सिद्धांत तथा रिटडिज्क पुटनम सिद्धांत के माध्यम से भी यही सिद्ध करती है कि भूतकाल और भविष्य किसी न किसी रूप में सदैव मौजूद ही हैं। अर्थात् वे भी वर्तमान में अस्तित्व में हैं।

वैज्ञानिक जगत में सुपरडिटर्मिनिज़म का नया सिद्धांत कहता है कि वास्तविकता स्थिर नियमों के अनुसार चल रही है, जिसमें स्वतंत्र इच्छा के लिए कोई जगह नहीं है। हाल ही में संपन्न हुए 'विग्नर के दोस्त' नाम से प्रसिद्ध प्रयोग भी इसके लिए अतिरिक्त सबूत प्रदान करते हैं।

क्वांटम मैकेनिक्स की विभिन्न व्याख्याएं भी 'सुनिश्चित नियतिवाद' के साथ मेल खाती हैं, जिसके अनुसार ब्रह्मांड ज्यादा नियमबद्ध यानी जादू जैसा कम प्रतीत होता है। यदि सुपरडिटर्मिनिज़म सत्य है, तो हमारी वैकल्पिक चुनावों में स्वतंत्रता की धारणा भ्रांतिपूर्ण है, क्योंकि वास्तविकता रेल की पटरी जैसे पूर्व-सुनिश्चित मार्ग पर चल रही है।

भारतीय मनीषा के अनुसार जगत में सब भाग्यानुसार हो रहा है। कर्म करने का अहंकार यानी कर्ता-भाव एक भ्रम है। पूरब के अवचेतन मन में ऐसी धारणा एवं पुनर्जन्म सिद्धांत की जड़ें गहरी जमी होने से यहां के लोग बहुत निश्चिंत हैं। पश्चिमी मुल्कों में इतनी अधिक शीघ्रता, तेज गति में उत्सुकता, अशांति, मानसिक चिंता एवं भय (एंग्जाएटी एंड फोबिया) की वजह नियति को न मानना है।

शराब पीने की लत त्यागकर मैं एक भला व्यक्ति कैसे बनूं?

चलो आपके अंदर इतनी अच्छी भावना पैदा तो हुई। हम स्वागत करते हैं आपका और जैसा आपने चाहा है बिल्कुल ऐसा हो सकेगा। मेरे आशीर्वाद से नहीं, आपके भीतर यह भावना जाग गई, इसी से होगा। इसकी क्रेडिट मुझको नहीं आपको ही जाती है। आप यहां बिन बुलाए आए हैं। निश्चित रूप से आपके अंदर कुछ परिवर्तन होने लगा है। कोई है जो आदत से छुटकारा पाना चाहता है। कुछ जागरण की लहर, कुछ बेहोशी तोड़ने का ख्याल उत्पन्न हो गया। परिवर्तन निश्चित रूप से आएगा। लेकिन आपके भीतर से आएगा। मेरे आशीर्वाद से या किसी के आशीर्वाद से

नहीं आएगा। सुंदर हो रहा है, शुभ हो रहा है। अपनी इस भावना को मजबूत बनाने के लिए आपको भी मैं निमंत्रण देता हूं। आप सम्मोहन प्रज्ञा में आइए। उस तीन दिन के कार्यक्रम में आप सेल्फ हिप्नोसिस करना सीख जाएंगे। रोज रात को सोने के पहले बीस मिनट वह भावना करके सोयेंगे। जो आप परिवर्तन चाहते हैं कल्पना करना कि वैसा हो ही गया और आप देखेंगे। कुछ दिनों के अंदर शराब छूट गई।

आपके करने से ही यह होगा। यह निर्णय आपके भीतर से आया है। यह भावना आपके भीतर से उत्पन्न हुई है। मैं सिर्फ रास्ता बता सकता हूं। अगर मेरे आशीर्वाद से आप छूटते, तब तुम्हें थोक में आशीर्वाद दे देता। शराब के ठेकेदार मुझे मारने को आ जाते कि हमारा धंधा खत्म हुआ जा रहा है। नहीं, मेरे आशीर्वाद से नहीं होगा। किसी के आशीर्वाद से नहीं होगा। जो होना है, आपके संकल्प से, आपके विल पावर से होगा। इस बात को खूब अच्छे से समझ लीजिए। दुनिया का कोई गुरु आपके लिए कुछ नहीं कर सकता। जो करना है, आपको अपनी मेहनत से पाना है। गुरु इतना ही कर सकता है- मार्ग दिखा दे, रास्ता दिखा दे कि कैसे? जैसे, मैंने आपसे कहा तीन दिन के लिए आप सम्मोहन प्रज्ञा अटेंड कर लीजिए। करना तो आप ही कहो कि घर जाकर उसके अभ्यास भी आपको ही करना होगा।

गुरु को ऐसा समझना जैसे नक्शा होता ना। नक्शा, थोड़ी आपको कहीं पहुंचाता है? लेकिन नक्शे से हमको मदद मिल जाती है। रेलवे टाइम टेबल थोड़ी आपकी यात्रा कराता है। हां, रेलवे टाइम टेबल पढ़कर हमको थोड़ी सी सहायता मिल जाती है। हमको पता चल गया कि कहाँ हमको जाना है। तो बीच में एक जंक्शन है, जहां बदलनी होगी। रिजर्वेशन कैसे होगा, उसकी प्रोसेस पता चल गई। कितनी देर में पहुंचेंगे, वो सब हिसाब हो गया। कब लौटना है, उसकी वापसी की टिकट बुक कर लें। इतना ही मिला। करना तो सब कुछ अपने को पड़ेगा। टिकट भी बुक करनी पड़ेगी, ट्रेन में बैठना भी होगा। जाना होगा, घूमना होगा, यात्रा करना होगा। करना तो सब कुछ अपने को है। बस ऐसे ही समझना गुरु शिष्य के बीच का नाता है। हमारे देश में एक गलत धारणा प्रचलित है कि शिष्य गया गुरु के चरण छू लिए और बस हो गया सब काम। काश! इतना सस्ता होता। आप अन्य चीज में वैसा नहीं करते।

अपेंडिक्स में दर्द हो रहा था और अपेंडिक्स फटने वाला था और आप गए और सर्जन के पैर छू लिए और वापस लौट आए घर। आप जानते हो इससे बात नहीं बनेगी। ऑपरेशन करवाना होगा। सर्जन के पैर छूने से क्या होगा? कई लोग आ जाते हैं कि गुरु जी आपके दर्शन करने आए हैं। मेरे दर्शन करने का हक है। मैं टेलीविजन पर रोज आता हूं। मेरे दर्शन से क्या होगा। बताइए, सृजन के दर्शन से कुछ होगा क्या? डाक्टर के दर्शन से कुछ होगा? कि उसकी सलाह मानने से होगा? किसी को डायबिटीज है। वो जाता है डायबिटीज स्पेशलिस्ट के पास दर्शन करके आ जाता है। फिर अपने आइसक्रीम खाता है, मिठाइयां खाता है, क्या उसकी डायबिटीज ठीक होगी? वो कहेगा हम तो रोज, सबसे बड़े डायबिटीज स्पेशलिस्ट के दर्शन करते हैं। तुम रोज दिन में छह बार करो, मरोगे। वह जो कह रहा है उसकी बात समझनी होगी, माननी होगी। मुझे, परहेज बता रहा है, वो भी करना पडेंगे। मुझे दवाई और इंजेक्शन जो कह रहा है वो लेने होंगे। अपना प्रिस्क्रिप्शन घर ले आओ और उसकी पूजा करने लगो। क्या इलाज हो जाएगा? अधिकांश लोग धर्मग्रंथों को पूज रहे हैं, शाó◌ो◌ की पूजा प्रार्थना कर रहे हैं। दिमाग खराब हैं प्रिस्क्रिप्शन की पूजा कर रहे हैं। इसका मतलब वो बात समझे ही नहीं कुछ। कुछ का कुछ समझ गए। नहीं! कोई गुरु तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सकता। जो कहते हैं कि वो कुछ कर देंगे, वो झूठ बोल रहे हैं। क्योंकि तुम हो आलसी, तुम कुछ करना नहीं चाहते और तुमको ठीक आदमी मिल गया। झूठे शिष्य को झूठा गुरु।

उसने कहा- बेटा, खुश रहो! बस। हमने सिर पर हाथ रख दिया सब ठीक हो जाएगा। कई लोग मेरे पास आते है। मैं कहता हूँ, देखो! मैं अपने सिर पर हाथ रखा करता था, कभी कभी। मेरे सारे बाल झड़ गए। मैंने जिस जिस के सर पर हाथ धरा, उसके बाल झड़ गए! बोलो, तैयार हो। फिर मुझसे मत कहना और तो कुछ होने वाला नहीं। ज्यादा से ज्यादा जो हो सकता है मेरे अनुभव से बता रहा हूँ। मेरा सिर दुखता था, सिर पर अक्सर हाथ रखता था। मेरे बाल

झड़ गए। मेरे आशीर्वाद से ज्यादा ज्यादा यही हो सकता है। अपनी मेहनत स्वयं करनी होगी। गुरु मार्गदर्शक है, गाइड, नक्शा। बस इससे ज्यादा नहीं। रेलवे टाइम टेबल जैसा। तुम ठीक से उपयोग कर लोगे, तो बड़े काम का। तुम रेलवे टाइम टेबल की पूजा करने लगे, फिर घर बैठे रहोगे। जाना था हरिद्वार और तुम हरिद्वार का नक्शा ले आए पूरा। अगरबत्ती जलाने लगे नक्शे के आगे। तुम हरि के द्वार कभी न पहुंच पाओगे अपने घर में रहोगे। जो मैंने कहा है वह करना।

क्या मैं एक मोटिवेटर बन सकता हूँ जो सभी के जीवन स्वस्थ, सुंदर और आनंदमय बना दे?

मैं आपको निमंत्रण करता हूं कि ध्यान से आप आरंभ कीजिए। पहले स्वयं की ट्रेनिंग हो जाए। यहाँ ध्यान शिविर आप छह दिन का अटेंड कीजिए। इसके बाद सम्मोहन की जीवन कला, तीन दिन का कार्यक्रम है- सेल्फ हिप्नोसिस! वह सीखिए और अगले दो तीन महीने तक अपने ऊपर कार्य करिए ताकि आपके भीतर की पूरी क्रिएटिव एनर्जी रिलीज हो जाए, एक्सप्रेशन में आ जाए। फिर आप दूसरों को मदद कर पाएंगे। मैं स्वागत करता हूं आपके इस भावना का। आपके भीतर प्रकृति ने जो एक प्रेरणा पैदा की है कि सबके मंगल के लिए सबके कल्याण के लिए कुछ करना चाहते हैं। बहुत सुंदर बात है अपने आप को सौभाग्य शाली समझें।

ऐसा प्रेमपूर्ण ख्याल, दूसरों की मदद करने का ख्याल, बहुत कम लोगों के हृदय में पैदा होता है। हमारी लिमिटेशन बड़ी छोटी है। थोड़े से लोगों को बामुश्किल हम प्रेम करवाते हैं। एक मां अपने बच्चों के कल्याण की तो सोचती है लेकिन बस वही उसकी लिमिट है। चार पाँच लोगों का छोटा सा परिवार। उसके बाहर की सोचना बड़ा मुश्किल हो जाता है। अच्छा हुआ, आपके प्रेम की सीमा थोड़ी बड़ी हुई। आपकी शुभ भावना के लिए, मैं आपको आशीर्वाद देता हूं! और शुरुआत कैसे करें? मैं आपको बता रहा हूँ। स्वयं ध्यान में डूबिए। अपने आप को सेल्फ हिप्नोटाइज करिए। उस कार्य के लिए संकल्पना कीजिए। दो तीन महीने में आप देखेंगे कि चीजें बदलने लगीं और आपको उस प्रकार का कार्यक्षेत्र अपने आप हासिल होने लगा जो आप चाहते थे।

कैसे अपने हृदय की बात उन तक पहुंचा सके, वह भी एक कला है। सामान्यतः हमें आर्ट आफ एक्सप्रेशन, अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की कला नहीं आती। आधे लोग यहां जितने बैठे हैं उनको अगर माइक पर बुलाकर कुछ कहने को कहेंगे। एक गीत की दो पंक्तियां सुनाने की कहेंगे, तो घबराहट पैदा हो जाएगी उनको, हाथ काँपने लगेंगे। जो गाना याद था वो भी भूल जाएंगे। खूब अच्छा अपने घर में गा रहे थे बाथरूम सिंगर हैं। मगर माइक पे आने से गला रुंध जायेगा, बेसुरी आवाज निकलेगी। भीतर नर्वसनेस आ जाएगी। छोटी सी चीज भी हम एक्सप्रेस नहीं कर पाते तो क्रिएटिव होने के लिए, बड़ा साहस और हिम्मत चाहिए और दूसरों के भीतर ऐसी प्रेरणा जगाना, अपने आप में बड़ा ही मोटिवेटिंग कार्य है।

हमारे अंदर बहुत कुछ छुपा हुआ है, दबा हुआ है, जो हम करना चाहते हैं। परमात्मा ने हमको ऐसी प्रेरणा दी है। कोयल गा लेती है, चिड़ियाँ गा लेती हैं, बुलबुल गा लेती है, कौआ तक गा लेते है, किसी को कोई संकोच नहीं। परमात्मा ने जैसी आवाज दी है ठीक, इसमें क्या संकोच। एक आदमी जिसको हर चीज में संकोच है। तो निश्चित रूप से आपके भीतर सुंदर प्रेरणा जगी है। आप आचार्य बनें। मैं आपको निमंत्रित करता हूँ और इस कार्य में लगें।

जीवन में दुख संबंधी गलतफहमियां कौन सी हैं?

दुख मानव जीवन का एक सामान्य अनुभव है। किंतु दुख के संबंध में कुछ भ्रांतियां हैं। ये भ्रांतियां हमारी मानसिक दशा को बहुत जटिल बना देती हैं। सही जानकारी के साथ, सत्य का सामना करके, हम इन भ्रांतियों को दूर कर सकते हैं और अपने जीवन को सकारात्मक रूप से परिवर्तित कर सकते हैं। यहां समझने के लिए बेहतर हो कि हम बाहरी और शारीरिक संताप को कष्ट कहें, तथा मानसिक संताप को दुख कहें।

1 भ्रांति है कि सभी कष्टों का कारण समान होता है। वस्तुतः विभिन्न लोगों में स्थितियों के आधार पर कष्ट के कारण भिन्न हो सकते हैं।

2 भ्रांति है कि कष्टों से बचना संभव नहीं है, अतः इसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

3 भ्रांति है कि कष्ट सभी व्यक्तियों के लिए एक जैसा होता है। वास्तविकता में, प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग तरीके से कष्ट को झेलता है और इसे अनुभव करने और उससे बाहर आने के तरीके भी भिन्न हो सकते हैं।

4 भ्रांति है कि कष्ट अनंत है, हमेशा रहेगा और कभी समाप्त नहीं होगा।

5 भ्रांति है कि दुख का कारण सिर्फ बाहरी परिस्थितियों में होता है। वास्तविकता में, आंतरिक अनुभव, विचारधारा, और मानसिक स्तर पर दुख के कारण होते हैं।

6 भ्रांतिः किसी से भी पूछो, उत्तर मिलेगा कि हम तो बड़े सुखी हैं, प्रभु की बड़ी कृपा है। हमें पता ही नहीं कि हम दुखी हैं। चूंकि मानसिक रुग्णता स्वीकारने में अहंकार को चोट लगती है। इसलिए हम बीमारी को मानते ही नहीं, फिर चिकित्सा क्यों करवाएंगे?

7 भ्रांतिः दूसरे व्यक्तियों या परस्थितियों से मिलने वाली चोटों से हम दुखी हैं। जबकि दुख का कारण स्वयं में है, बाहर नहीं है। बीमारी जहां पर है वहीं पर इलाज करना होगा। जहां पर बीमारी नहीं वहां इलाज करते हैं इसलिए हम असफल हो जाते हैं। हजारों साल से माना जाता था कि कुष्ठ रोग की वजह पिछले जन्मों के पाप हैं। लेकिन इस मान्यता से कभी किसी को कोई लाभ न मिला। फिर वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शी बनाकर देखा कि यह त्वचा की बीमारी एक कीटाणु के कारण पैदा होती है। शीघ्र ही इलाज खोज लिया गया। ठीक निदान होने पर ठीक चिकित्सा संभव है। गलत डायग्नोसिस होगी तो गलत ट्रीटमेंट होगा। उससे फायदा नहीं, नुकसान ही होगा।

8 भ्रांति है कि दुख दुश्मन है। वस्तुतः दैहिक, दैविक, भौतिक ताप मिलने की अस्तित्व की सारी व्यवस्था उपयोगी है। जैसे जहां हमें चोट लगती है, वहां से हम बचते हैं, संभलकर गुजरते हैं, उस चीज के प्रति सावधान रहते हैं। अपने प्रति भी हमारी याददाश्त बनी रहती है। ऐसे ही बाहर से चोट खाकर हमें अपने स्वरूप की ओर लौटना चाहिए। जगत की यह व्यवस्था दुश्मन नहीं है, सहयोगी है। जीवन में आए दुख की पीड़ा को पूरी तरह से महसूस करें ताकि वहां से हमारा विड्रोल, वैराग्य हो, प्रतिक्रमण हो। हम खुद की ओर लौटें।

9 सदियों से प्रचलित भ्रांतियां हैं कि दुख का कारण जन्म तिथि, मुहूर्त, भाग्य, कुंडली, हस्तरेखा, विधाता, किस्मत, ईश्वर की मर्जी, विगत जन्म के दुष्कर्म, ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति, देवी-देवताओं का प्रकोप, किसी की बद्दुआ, बुरी नजर, अभिशाप, भूतप्रेत आदि हैं। वास्तव में मनुष्य का मुख्य रोग क्या है? बुद्धपुरुष कहते हैं कि हम दुखी हैं क्योंकि हम आत्म-विस्मरण में हैं। बाहरी व्यस्तताओं में हम ऐसे उलझे हैं कि अपनी भीतरी संपदा हमें भूल गई है।

10 उपाय संबंधी भ्रांतिः जितने भी दुख मिटाने के उपाय समझे जाते हैं, वस्तुतः वे दुख भुलाने के उपाय हैं। जैसेः मनोरंजन, शराब, व्यस्तता। उनसे और अधिक आत्म-विस्मरण होता है। वास्तविक मेडिसन का नाम मेडिटेशन है। ध्यान से हमारी चेतना स्वयं की ओर प्रतिक्रमण करके निराकार स्वरूप में स्वतंत्रता अपने विराटता के साम्राज्य को पाती है, जहां कोई अपेक्षा नहीं है, कामना नहीं है, अकारण पूर्ण तृप्ति का एहसास है।

11 दुख जगाने का आयोजन है। अन्यथा हमारी चेतना सोई ही रहे। अगर दुख के अनुभव न होते तो कोई संत न होता। भगवान बुद्ध ने तो अपनी शिक्षा का सार चार आर्य सत्यों में व्यक्त किया है। पहला आर्य सत्य है कि जीवन दुख है।

सुख-दुख दोनों उत्तेजनाएं अशांतिदायी हैं--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं?

सुख-दुख दोनों उत्तेजनाएं अशांतिदायी हैं।

आनंद शब्द ठीक नहीं है, खतरनाक है। शांति में भाव बिल्कुल दूसरा है। शांति का अर्थ हैः न सुख, न दुख, सब शांत है। कोई तरंग नहीं है--न दुख की, न सुख की। बुद्ध कहते हैं, आनंद नहीं। मैं आनंद का आश्वासन नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनंद का आश्वासन दूंगा और तुम सुख का आश्वासन ले लोगे। यह जो कठिनाई है, जो कठिनाई है, बात आनंद की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी, क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है।

सुख भी एक अशांति है--प्रीतिकर हम समझ सकते हैं उसे। हम चाहते हैं ऐसी अशांति। एक आदती सितार बजा रहा है, बड़ा प्रीतिकर है, लेकिन है तो शोरगुल। है तो शोरगुल ही, कितनी देर सहोगे? अशांति ही है। प्रीतिकर अशांति को हम सुख कहते हैं, अप्रीतिकर अशांति को हम दुख कहते हैं। अगर प्रीतिकर अशांति को जारी रखा जाए तो प्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा, अशांति रह जाएगी। और अगर अप्रीतिकर अशांति को भी जारी रखा जाए तो अप्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा और अशांति भी सहने योग्य, प्रीतिकर हो जाएगी। एक आदमी रेल के दफ्तर में काम करता है तो सितार नहीं सुनता, रेलगाड़ी के इंजन, सीटियां और सब आवाजें सुनता है। वहीं सोता भी है रात, तो सो लेता है। सात दिन की डयूटी के बाद घर लौटता है आठवीं रात, तो नींद नहीं आती।

अभी वह एक मित्र यहां मेरे पीछे आकर ठहरे थे पूना के। उन्होंने कहा कि हम एक दिन हाउस-बोट में ठहरे थे आकर--बहुत आनंद आया। फिर दूसरी दफा आए तो हमने पंद्रह दिन के लिए इकट्ठा ही बुक कर लिया और पैसे दे दिए। और हम ऐसी मुसीबत में पड़ गए कि ये पंद्रह दिन कैसे पूरे हों! क्योंकि वही पानी, वही नाव, वही रोज वहां जाना! इतनी घबड़ाहट हो गई कि हम चौथे दिन भाग गए वह पैसे छोड़ कर वहां से। क्योंकि वह तो घबड़ाने वाला हो गया। और जो दुख में भी नहीं भागता, वह शांत हो जाता है, क्योंकि अब अशांत होने का क्या कारण रहा? वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है, वह अपने पर लौट आता है। ऐसी यात्रा से पहुंचता है व्यक्ति मुक्ति में।

क्या जीवन में आनंद की प्राप्ति असंभव है?

कबीर साहब के वचन पर आधारित ओशो की एक किताब का शीर्षक है--'देख कबीरा रोया'। गुरु नानक भी कुछ ऐसा ही कहते हैं- 'नानक दुखिया सब संसार'। इनसे मिलता-जुलता बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य है- 'जीवन दुख है'। दुख की इतनी चर्चा क्यों? क्या जीवन में आनंद की प्राप्ति असंभव है?

बिल्कुल संभव है। कबीर, नानक, बुद्ध हमारे जीवन को देखकर रो रहे हैं। उनके आंसू करुणा के आंसू हैं। संत का जीवन तो अपूर्व आनंदमय है। वह तो परमानंद में जीता है। इस किताब मे, देख कबीरा रोया में, ओशो ने पारीवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान दिए हैं, उनकी करुणा प्रवाहित हुई है। इस किताब में विश्व की दुर्गति पर, बुरे हालातों पर आंसू बहाए हैं। कबीर साहिब कहते हैं-

चलती चाखी देखकर दिया कबीरा रोय
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय

दो पाट कौन से हैं--दो अतियों पर जीने का ढंग हमें पीस रहा है। और सम्यक मार्ग जो है वह मध्य में है। बीत गया कल और एक आने वाला कल--इन दो पाटों के बीच हमारा मन डोल रहा है। वर्तमान में ठहर जाए तो समाधान मिल जाए। वर्तमान ही समाधान है। अभी और यहां--यह क्षण--आनंद का द्वार है। इसीलिए संतजन हमें द्वार बता रहे हैं, विधि बता रहे हैं। मन या तो अतीत होता है या भविष्य। वर्तमान में मन की कोई सत्ता नहीं। और मन ही संसार है; इसलिए वर्तमान में संसार की भी कोई सत्ता नहीं। और मन ही समय है; इसलिए वर्तमान में समय की भी कोई सत्ता नहीं।

अतीत का वस्तुतः कोई अस्तित्व तो नहीं है, सिर्फ स्मृतियां हैं। जैसे रेत पर छूटे हुए पगचिह्न। सांप तो जा चुका, धूल पर पड़ी लकीर रह गई। ऐसे ही चित्त पर, जो बीत गया है, व्यतीत हो गया है, उसकी छाप रह जाती है। उसी छाप में अधिकतर लोग जीते हैं। जो नहीं है उसमें जीएंगे, तो आनंद कैसे पाएंगे? प्यास तो है वास्तविक और पानी पीएंगे स्मृतियों का! बुझेगी प्यास? धूप तो है वास्तविक और छाता लगाएंगे कल्पनाओं का! रुकेगी धूप उससे?

अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। अतीत जा चुका, मिट चुका। मगर हम जीते हैं अतीत में। और इसलिए हमारा जीवन व्यर्थ, अर्थहीन, थोथा। इसलिए जीते तो हैं, मगर जी नहीं पाते। जीते तो हैं, लेकिन घिसटते हैं। नृत्य नहीं, संगीत नहीं, उत्सव नहीं। और अतीत रोज बड़ा होता चला जाता है। चैबीस घंटे फिर बीत गए, अतीत और बड़ा हो गया। चैबीस घंटे और बीत गए, अतीत और बड़ा हो गया। जैसे-जैसे अतीत बड़ा होता है, वैसे-वैसे हमारे सिर पर बोझ बड़ा होता है। इसलिए छोटे बच्चों की आंखों में जो निर्दोषता दिखाई पड़ती है, जो संतत्व दिखाई पड़ता है, वह फिर बूढ़ों की आंखों में खोजना मुश्किल हो जाता है। हजार तरह के झूठ इकट्ठे हो जाते हैं! सारा अतीत ही झूठ है!

मेरी दृष्टि में तो भारत के विचार की शक्ति खो गई है; भारत के पास विचार की ऊर्जा नष्ट हो गई है। भारत ने हजारों साल से सोचना बंद कर दिया है। भारत सोचता ही नहीं है। यह इतना बड़ा पत्थर भारत के प्राणों पर है कि अगर कुछ हजार लोग अपने सारे जीवन को लगा कर इस पत्थर को हटा दें, तो भारत का जितना हित हो सकता है, उतना ये तथाकथित रचनात्मक कहे जाने वाले कामों से नहीं।... समाज को बदले बिना सारे रचनात्मक काम पुराने समाज को बचाने वाले, टिकाने वाले सिद्ध होते हैं।

समाज की जीवन-व्यवस्था में आमूल-रूपांतरण न हो, तो समाज में चलने वाली सेवा, समाज में चलने वाला रचनात्मक आंदोलन पुराने समाज के मकान में ही पलस्तर बदलने, रंग-रोगन करने, खिड़की-दरवाजों को पोतने वाला सिद्ध होता है। नहीं, आज समाज को रचनात्मक काम की नहीं, विध्वंसात्मक काम की जरूरत है; आज समाज को कंस्ट्रक्शन की नहीं, एक बहुत बड़े डिस्ट्रक्शन की जरूरत है। आज समाज के पास इतना कचरा, इतना कूड़ा है हजारों साल का कि उसमें आग देने की जरूरत है। इस वक्त जो लोग हिम्मत करके विध्वंस करने को राजी हैं, वे ही लोग एकमात्र रचनात्मक काम कर रहे हैं। यह समाज जाए, यह सड़ा-गला समाज नष्ट हो, इसके लिए सब-कुछ किया जाना आज जरूरी है।—OSHO

क्या जीवन में आनंद संभव है?

कितने आश्चर्य की बात है कि हमें संदेह पैदा होने लगा है कि क्या जीवन में आनंद संभव है? सुप्रसिद्ध पश्चिमी विचारक नीत्से ने कहा है कि आनंद केवल कपोल-कल्पना है। परंतु याद रखना, नीत्से विक्षिप्त दशा में मरा। उसने इंकार किया था ईश्वर को--ईश्वर मर गया है। ईश्वर यानी परम-आनंद की अवस्था।

डेविड ह्यूम कहता है कि मैंने ऐसा आदमी ही नहीं देखा, जो वस्तुतः आनंद चाहता हो। कोई आदमी कार, बंगला, पत्नी, संतान, प्रतिष्ठा तो कोई स्वास्थ्य चाहता है। हमारे मन की महत्वाकांक्षा के तीन तर्क हैं दौड़ने के। 1 जोर से दौड़ो तो आनंद मिलेगा, 2 वहां न मिले तो रास्ता बदलो। 3 आनंद है ही नहीं, इसलिए नहीं मिलता है।

अगर आपसे कोई कहे कि आनंद सीधा ही मिल जाता है, तो मन कहेगा, छोड़ो! ऐसे आनंद में क्या हो सकता है जो बिना किसी चीज के मिल जाए! कंटेनर तो चाहिए ही। कंटेंट से किसी को प्रयोजन नहीं है। खाली डिब्बा ही सही!

निर्वाण उपनिषद का यह ऋषि कहता है, आनंद भिक्षाशी। संन्यासी की एक ही अभीप्सा है--आनंद। हम वे वस्तुएं मांगते हैं जिनसे आनंद मिल सके। सीधा आनंद हम कभी नहीं मांगते। साधन तो मिल जाते हैं, साध्य नहीं मिलता। असल में आनंद का कोई भी साधन नहीं है। जो कमाया जा सके, वह आनंद नहीं है।

आनंद है आत्म-अनुभव। जैसे-जैसे आत्मा की तरफ सरकोगे वैसे-वैसे आनंद का स्वाद उपलब्ध होना शुरू हो जाएगा। लेकिन हमारे मन की आदतें तो दुख ही दुख की हैं। शिकायत, निंदा, विरोध, संघर्ष, भूत-भविष्य में डोलना, यांत्रिक ढंग से जीना--ये हमारी मन की आदतें हैं। इन आदतों से जागो तो आनंद अभी घट जाए--इसी क्षण, यहीं! जागो! आनंद बरस ही रहा है। आनंद अस्तित्व का स्वभाव है। तुम सोए हो, इसलिए अपरिचित हो। खोजना नहीं है कहीं--सिर्फ जागना है। भीतर का कुआं खोदना शुरू कर दो। जल्दी ही, जैसे हर जमीन के नीचे जल-स्रोत हैं, ऐसे ही हर हृदय के भीतर आनंद का स्रोत है।

योगेनसदानंदस्वरूप दर्शनम्। योग द्वारा संन्यासी सदैव आनंद-स्वरूप का दर्शन करते हैं। आनंद सदैव न हो तो आनंद ही नहीं है। दुख-सुख आता है और जाता है। क्या फिर ज्ञानी के ऊपर दुख, बीमारी, जरा, मृत्यु नहीं आती? मृत्यु तो फिर भी आती है, लेकिन उस पर नहीं आती अब। इस दूरी की प्रतीति, इस तादात्म्य का टूट जाना, नान-आइडेंटिफिकेशन योग है। योग का अर्थ है वे प्रक्रियाएं, जिनके द्वारा आप अपनी असली शकल को पहचान लेंगे। साक्षी बनकर अपनी मौलिक दशा को, ओरिजनल स्टेट को समझ लेंगे। ऋषियों ने उस स्थिति के लिए कहा है, सच्चिदानंद। सत, चित, आनंद।

हमारे बड़े आइडेंटिफिकेशन हैं। विवेकानंद जिस सिंह की कथा सुनाते थे, उस सिंह पर तो ज्यादा मुसीबत न थी, एक ही उसका तादात्म्य था कि 'मैं भेड़ हूं।' हमारे तादात्म्यों का कोई अंत नहीं। हजार-हजार तादात्म्य हैं।

अहंकार आनंद नहीं है; मन आनंद नहीं है; बाहर आनंद नहीं है; दूसरे में आनंद नहीं है; आनंद दुख का अभाव है, यह नेति की भाषा हुई। यह तो बताया कि आनंद क्या नहीं है। मगर आनंद क्या है, यह तो अनबताया रह गया।

एक वीतरागता का बड़ा झूठा रूप इस देश में प्रचलित हुआ है--निषेधात्मक, नकारात्मक, जीवन-विरोधी, उत्सव-विरोधी। वह सिकुड़ना सिखाता है, फैलना नहीं। विस्तीर्ण होना ही ब्रह्म के निकट आने का उपाय है। आनंद फैलाव है, दुख सिकुड़ाव है। जब तुम दुखी होते हो तो बिल्कुल सिकुड़ जाते हो। विराट के साथ एक हो जाना है आनंद। लेकिन आनंद को समा तो न सकोगे। आनंद तो उछलेगा, अभिव्यक्त होगा, बजेगा--हजार-हजार रागों में। बरसेगा--हजार-हजार रंगों में। वही उत्सव है।

ओशो कहते हैं: 'मेरे करीब आओ। मेरे शब्दों को ही मत सुनो, मेरे शून्य को अनुभव करो। मेरे निःशब्द में तैरो। धीरे-धीरे बूंद-बूंद अमृत कंठ से नीचे उतरेगा। तुम जानोगे, निश्चित जानोगे कि आनंद क्या है। जब आनंद उपलब्ध होता है और उसे कहने का कोई उपाय नहीं मिलता, तो उस असहाय अवस्था में उत्सव पैदा होता है। यहां वीणा बजी है, धीरे-धीरे बहरे से बहरे कानों को भी सुनाई पड़ने लगी है।'

अपने आप को खुश रखने के लिऐ क्या करे?

मित्र, ध्यान में डूबें, अपने आप को पहचानें। खुद के सच्चे स्वरूप को जानें।

इसके अतिरिक्त खुश होने का ना कोई मार्ग था, ना है, और ना होगा।

जीवन भर खुश कैसे रहें?

पूरे जीवन की चिंता छोड़िए। सिर्फ एक क्षण की फिक्र कीजिए। एक एक क्षण मिलकर ही संपूर्ण जीवन बन जाता है।

आपके पास जीवन का एक दिन शेष है आप इसे किस प्रकार बिताना चाहेंगे?

आनंद और उत्सव पूर्वक हर दिन बिताना चाहेंगे। मेडिटेशन एंड डिवोशन, ओशो यानी सेलिब्रेशन।

कौन-सी बात अधिक महत्वपूर्ण है - खुशी या सफलता?

दोनों का संबंध कार्य-कारण का नहीं बल्कि साहचर्य का है। इस मनोविज्ञान को जानकर सफलता नंबर दो की हो जाती है, और खुशी प्रथम हो जाती है। सफलता के बाद हमें खुशी का अहसास क्यों होता है?

एक उदाहरणः कार के पीछे अक्सर कुत्ते भौंकते हुए भागते हैं। यदि संयोगवश कार रुक जाए तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। बेचारों को समझ नहीं आता कि अब क्या करें? कुछ देर बाद फिर किसी दूसरी कार के पीछे दौड़ने लगते हैं। ऐसी ही किकर्त्वयविमूढ़ मनोदशा हमारी हो जाती है, जब सफलता हाथ लगती है।

सफलता की खुशी का कारण बड़ा विचित्र है। लंबे समय से हम किसी लक्ष्य को पाने का प्रयास कर रहे होते हैं, श्रम करते हैं, पसीना बहाते हैं, सपने देखते हैं, न जाने कैसी-कैसी तरकीबों का इस्तेमाल करते हैं, कठिन रास्तों पर अथक रूप से चलते हैं, तब कहीं जाकर एक दिन मंजिल पर पहुंचते हैं। अचानक हमारी यात्रा समाप्त हो जाती है। क्षणभर को हमें विश्राम मिलता है। हमारी कामना और कामना से उत्पन्न होने वाले विचारों का सिलसिला थम जाता है। उस निष्काम एवं निर्विचार मनोदशा में आनंद का अनुभव होता है। वह आनंद हमारे भीतर से आता है।

किंतु पुरानी आदतवश हम शीघ्र ही नई कामनाएं और महत्वाकांक्षाएं पैदा कर लेते हैं। पुनः विचारों के जाल में उलझ जाते हैं। तुरंत आनंद समाप्त हो जाता है। चंचल मन फिर तीव्र गति से भागदौड़ करने लगता है। हम फिर परेशान और चिंतित होने लगते हैं। नए लक्ष्य को पाने के लिए तरसने लगते हैं।

इसलिए इस बात को खूब अच्छे से समझ लीजिए कि सफलता का आनंद वस्तुतः सफलता में नहीं, बल्कि निर्विचार, निर्वासना और निष्काम हो जाने में है। ऐसी भावदशा तो हम कभी भी निर्मित कर सकते हैं। इसके लिए महत्वाकांक्षाओं के सपने पालने और उनके पीछे पागलों की भांति दौड़ने की जरूरत ही नहीं है।

यही है सफलता के पीछे खुशी का रहस्य। ध्यानी व्यक्ति कभी भी, कहीं भी इस खुशी में डूब जाता है, क्योंकि उसे रहस्य का पता चल गया।

ध्यान में परमानंद पाकर मन रूपी कुत्ता भागना, भौकना बंद कर देता है। इसलिए इसे अंतिम यात्रा कहा है। यह सफलता नहीं, वरन सुफलता है--एकमात्र सुफलता, जिससे महा-संतोष फलित होता है।

आनंद, प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना, धर्म और प्रभु में अधिक महत्वपूर्ण कौन है?

आनंद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

ओशो ने संन्यास दीक्षा देते हुए किसी साधक को समझाया है कि तुम्हारा नया नाम है--*स्वामी देव आनंद।* देव यानी मनुष्य से परे, दिव्य, अलौकिक, अति-मानवीय, ईश्वरीय। और आनंद यानी अकारण प्रसन्नता; शाश्वत, सनातन, अपरिवर्तनशील प्रफुल्लता। स्मरण रहे कि मनुष्य के जीवन में मूलभूत खोज आनंद की खोज है। वही सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। तुम उसे क्या नाम देते हो--प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना, धर्म या प्रभु पुकारते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और केवल मनुष्य ही आनंद की खोज में नहीं हैः वृक्ष, नदियां, पर्वत, ग्रह, पशु-पक्षी, हर कोई अपने तरीके से आनंद की खोज में मग्न है।

एक बार यह समझ में आ जाए, एक बार हम सजग हो जाएं कि हमारे प्राणों की असली खोज आनंद की है, तो चीजें समझनी आसान हो जाती हैं। तब हम अंधेरे में टटोलते नहीं रहते, स्पष्ट दिशा-बोध होता है। तब हमें जीवन का उद्देश्य पता चलता है; और हम अपनी ऊर्जा को पूरी तरह से, गहनता से, आनंद की उपलब्धि में संलग्न कर सकते हैं।

आनंद ही सबको प्रिय है। जब आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं, तो आप वास्तव में उस आनंद के प्रेम में पड़ जाते हैं जो उस व्यक्ति की मौजूदगी में प्रतीत होता है, उस व्यक्ति के साथ संवाद से उत्पन्न होता है। अगर आपको गुलाब के फूल से प्यार हो गया है तो इसका सीधा सा मतलब है कि गुलाब के सानिध्य में आप भी एक खिलावट, प्रसन्नता महसूस करते हैं। गुलाब केवल आनंद का द्वार है, वैसे ही वह व्यक्ति है जिसे आप प्रेम करते हैं।

गुरु वह परम द्वार है जिसके संग-साथ शिष्य के हृदय में गहन प्रेम जागता है। क्योंकि किसी और की तुलना में गुरु अधिक स्पष्ट रूप से, गहराई से, त्वरा से, अधिक भाव से आनंद विकीर्णित करता है। उसकी आनंदमयी उपस्थिति में सहज ही श्रद्धा पैदा हो जाती है। श्रद्धा, प्रेम का ही बड़ा रूप है। इस प्रकार समझें तो हम भिन्न-भिन्न रूपों में आनंद की ही तलाश में हैं। यदि किसी कारणवश दो व्यक्तियों के बीच आनंद की धार बहनी बंद हो जाए, तो प्रेम नष्ट हो जाता है। आदर, सम्मान, श्रद्धा का समापन हो जाता है। अगर उदासी, दुख, क्रोध, ईर्ष्या, कलह इत्यादि के कांटे उग आएं, तो प्रेम के नाजुक फूल मुरझा जाते हैं, आनंद की सुगंध खत्म हो जाती है। घृणा, द्वेष और हिंसा की दुर्गंध फैलने लगती है।

इसलिए प्रेम या श्रद्धा भी चेतना की मौलिक खोज नहीं हैं। आनंद साध्य है, प्रेम या श्रद्धा यदि साधन बनते हैं तो ठीक! परमात्मा और धर्म भी साधन है, साध्य नहीं। यदि ईश्वर दुखदायी हो तो कौन उसे चाहेगा?

जीवन की मौलिक खोज आनंद की है। विवेकपूर्ण व्यक्ति इसे अपने भीतर तलाशता है। तब वह बिना किसी पर निर्भर हुए प्रत्यक्ष आनंद पाता है, परोक्ष ढंग से नहीं। शाश्वत आनंद का खजाना हमारी चेतना में मौजूद है। उसकी अनुभूति कभी समाप्त नहीं होती। वह परिस्थिति और किसी बाहरी व्यक्ति से नहीं आता। संत कबीर ने कहा हैः कस्तूरी कुंडल बसै। ध्यानी कहेगा कि वह स्वयं की आत्मा की सुवास है। भक्त कहेगा कि परमात्मा की कृपा की बारिस है। ध्यानी को खुद के भीतर से आती सुगंध महसूस होगी। भक्त को लगेगा कि आकाश से बरस रही है, सर्वत्र व्याप्त है।

आनंद मन के पार से, शून्य से उतरता है। इसे निर्मित नहीं किया जा सकता, मनुष्य इसे पैदा नहीं करता। इसे जन्माने की कोई संभावना नहीं है। कोई तकनीक, कोई पद्धति आनंद उत्पन्न करने में मदद नहीं कर सकती। आनंद मनुष्य की क्षमता से परे है। लेकिन फिर भी, मनुष्य इसे प्राप्त कर सकता है। आनंदित होने की पूरी कला ग्रहणशील होने की कला है। व्यक्ति को एक तरह के लेट-गो में होना होता है, तब यह अवतरित होता है। तुम्हें करीब-करीब अनुपस्थित होना पड़ता है, तब वह चारों दिशाओं से आकर तुम्हें भर देता है। इतना ही नहीं, वह तुमसे बाहर भी छलकने लगता है। शारीरिक और मानसिक सुख इंसान के वश में हैं, निर्मित किए जा सकते हैं। आनंद दिव्य है, आत्मिक है, इसका निर्माण असंभव है। यह हमेशा परमात्मा की ओर से मिला एक उपहार है। यह आशीष है, प्रभु-कृपा है। लेकिन मनुष्य भूल गया है कि कैसे प्राप्त किया जाए।

वह बहुत अधिक कर्ता-भाव से ग्रस्त हो गया है। उसे लगता है कि वह कुछ भी कर सकता है। चांद पर जा सकता है, परमाणु बम बना सकता है और प्रकृति के रहस्यों को उघाड़ सकता है। आधुनिक युग में पहली बार मनुष्य कर्ता-भाव में बुरी तरह उलझ गया है। और इस तरह उन अत्यंत मूल्यवान अनुभवों को खो दिया है जिन्हें केवल ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए कुछ मूल्य बिल्कुल विलीन ही हो गए हैं।

जैसेः प्रेम खो रहा है, क्योंकि तुम उसे उत्पन्न नहीं कर सकते। वह खुद-ब-खुद होता है, तुम्हारी क्रिया नहीं है। प्रेम का विज्ञान कभी नहीं बन सकता; इसे घटाने का कोई उपाय नहीं है। यह कार्य-कारण के जगत का अंग नहीं है। यह रहस्य है--जो बस, होता है!

जब हम बहुत अधिक कर्ताभाव से भर जाते हैं तो उस घटना के लिए बंद हो जाते हैं। धीरे-धीरे वे खिड़कियां, वे दरवाजे बहुत कसकर बंद हो जाते हैं और हम भूल ही जाते हैं कि वे भी कभी थे! हम करने पर केंद्रित हो गए हैं। कर्म बहुत कुछ कर सकता है, लेकिन सब कुछ नहीं; और मनुष्य के द्वारा जो कुछ भी किया जा सकता है वह साधारण व सांसारिक ही होगा। जो भी अलौकिक है, विराट है वह तो अवतरित होता है। महान काव्य मानव-निर्मित नहीं होता। हां, मनुष्य उसका माध्यम बनता है। श्रेष्ठ कला मानव निर्मित नहीं है। मनुष्य के माध्यम से परमात्मा ही कुछ करता है, मनुष्य आविष्ट हो जाता है। प्रेम, ध्यान, वह सब जो महान है, पवित्र है, वह मनुष्य के पार से, अज्ञेय से आता है। मनुष्य उस भेंट को प्राप्त करता है, सिर्फ ग्राहक है। ग्रहणशीलता की इस कला को सीखना, इसके प्रति संवदेनशील होना, खुले रहना ही संन्यासी होना है।

संन्यासी कर्ता नहीं है। संन्यासी होने का सीधा-सीधा अर्थ है विश्राम की स्थिति में होना, जहां मन काम करना बंद कर दे। एक बस खुलापन है, बिना सुरक्षा कवच के; कोमलता है, हृदय की उपलब्ध है। हवा में सूखे पत्ते की तरह, हवा जहां भी चलती है, पत्ता उसके साथ जाता है। जीवन की सरिता में स्वयं को छोड़ना है; और वह सागर की ओर जा ही रही है, तुम्हें तैरने की जरूरत नहीं है। केवल श्रद्धा जरूरी है, अपने-आपको नदी में बह जाने दें।

आनंद प्रार्थना का परिणाम नहीं है, पुरस्कार नहीं है। यह स्वयं प्रार्थना है। ऐसा नहीं है कि प्रार्थना करने वाले आनंदित हो जाते हैं। ठीक इसके विपरीतः आनंदित लोग प्रार्थनापूर्ण होते हैं। आनंद और प्रार्थना पर्यायवाची हैं। और एक बार यह समझ में आ जाए तो सारा जीवन एक प्रार्थना हो सकता है। अगर यह समझ में न आए तो प्रार्थना कर्मकांड बन जाती है। कभी पूरा जीवन नहीं बन पाती है। जब तक प्रार्थना पूरा जीवन, समग्रता न बन जाती, तब तक वह तुम्हें रूपांतरित नहीं कर सकती। वह एक कर्तव्य, एक औपचारिकता, एक अच्छा अनुष्ठान है। लेकिन वह तुम्हें कहीं नहीं ले जाती।

यदि कोई व्यक्ति सामान्य दैनंदिन जीवन में आनंदित रहता है, छोटे-छोटे काम भी प्रफुल्लता से करता है, तो उसके पूरे जीवन में प्रार्थना फैल जाती है। फिर वह प्रार्थनापूर्वक भोजन करता है क्योंकि आनंदपूर्वक भोजन करता है। प्रार्थनापूर्वक चलता है क्योंकि वह प्रसन्नतापूर्वक चलता है। वह प्रार्थनापूर्वक श्वास लेता है क्योंकि वह आह्लादपूर्वक श्वास लेता है।

आनंद, प्रेम, श्रद्धा, प्रार्थना, ध्यान, आत्मा, परमात्मा--सब संयुक्त हैं। इनका केन्द्रीय तत्व आनंद है। इसलिए ऋषियों ने परमात्मा को परमानंद कहा, सच्चिदानंद पुकारा।

मन को शांत रखने के लिए कौन सा योग करना चाहिए?

मन को शांत और स्थिर रखने के लिए योग एक महत्वपूर्ण तकनीक है। योग के माध्यम से आप अपने मन को नियंत्रित कर सकते हैं और आध्यात्मिकता, शांति और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं। यहां कुछ योगासन और प्राणायाम की विशेषता दी गई है जो मानसिक शांति प्राप्त करने में मदद कर सकते हैं:

शवासनः यह आसन आपको शारीरिक और मानसिक तनाव से छुटकारा दिलाने में मदद करता है। इसमें आप आराम से पड़कर अपने आपको शव की तरह ढीले होकर रखते हैं।

आनुलोम विलोमः यह प्राणायाम आपके मन को शांत करने में मदद कर सकता है। इसमें आप दीर्घ और निरंतर सांस लेते हैं, और उसे धीरे-धीरे छोड़ते हैं। इसके बाद, सांस बाहर निकालते समय अल्टर्नेट नाक से सांस लेते हैं।

प्राणायामः शांति प्राप्त करने के लिए प्राणायाम भी महत्वपूर्ण है। अनुलोम विलोम के अलावा, भ्रामरी प्राणायाम और उज्जायी प्राणायाम भी मानसिक तनाव को कम करने में मदद कर सकते हैं।

योग निद्राः यह आसन आपको गहरी आराम और शांति प्रदान करने में मदद करता है। इसमें आप आराम से पड़ते हैं और अपने शरीर के विभिन्न हिस्सों को ध्यान देते हुए उन्हें ढीला करते हैं।

ध्यानः ध्यान करने से आपका मन स्थिर और शांत हो सकता है। आप एक शांत स्थान पर बैठकर आंखें बंद करके अपने श्वास की ध्यान लगाएं और अपने मन को खाली करने का प्रयास करें।

योग को नियमित रूप से करने से आपका मन शांत और स्थिर हो सकता है, लेकिन यदि आपको किसी विशेष समस्या से जूझना हो तो एक आध्यात्मिक गुरु की मार्गदर्शन में योग करना उपयुक्त होता है।

इस क्षेत्र में ओशो ने अनेक नए प्रकार के ध्यान प्रयोग निर्मित किए हैं जो आधुनिक मनुष्य की मानसिक समस्याओं से शीघ्र मुक्ति दिलाने में सक्षम हैं।

क्या विपरीत परिस्थितियों में भी शांति मिल सकती है?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

एक आदमी के पैर में चोट लग गयी है। वह बहुत बेचैन है, दुखी है और परमात्मा की निन्दा करता है। एक मकान की बड़ी मन्जिल में न्यूयार्क की एक लिफ्ट में सवारी कर रहा है, ऊपर जा रहा है। जैसे ही लिफ्ट ऊपर उठने लगी है। उसने देखा कि लिफ्ट पर एक और आदमी भी सवार है। उसके दोनों पैर कटे हुए हैं, वह कुर्सी पर बैठा हुआ है, हंस रहा है और गीत गुनगुना रहा है। उसके पैर में जरा- सी चोट थी, वह परमात्मा के प्रति क्रोध से भरा हुआ था। उसने उस आदमी से पूछा- मेरे दोस्त, तुम्हारे पास क्या है? तुम्हारे दोनों पैर कटे हुए है और तुम गीत गुनगुना रहे हो हंस रहे हो।

उस आदमी ने कहा। मेरी दोनों आँखें शेष हैं, मेरे दोनों हाथ अभी शेष हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है जिसके दोनों हाथ भी कट गये हैं। मैंने ऐसा आदमी भी देखा है जिसकी दोनों आंखें भी नहीं थीं। दोनों पैर भी गये तो क्या हुआ? अभी मेरे दोनों हाथ शेष है, दोनों आंखें शेष हैं, अभी और सब कुछ तो शेष है। जो दो पैर चले गये हैं मैं उनके लिए भगवान के प्रति क्रोध प्रकट करूं या जो मेरे पास शेष हैं उसके लिए उसे धन्यवाद दूं? मैं क्या करूं?

जो हमारे पास है उसके लिए धन्यवाद दें या जो हमारे पास नहीं है उसके लिए शिकायत करें? मर्जी है आदमी की, जो चाहे करे। चाहे शिकायत करे, चाहे प्रशंसा करे, कोई कुछ कहने नहीं आयेगा, लेकिन दोनों हालात में जमीन-आसमान का फर्क पड़ जायेगा और उस फर्क से खुद को पीड़ा झेलनी पड़ेगी। शिकायत करने वाले का मन धीरे-धीरे उदास हो जाता है ओर निराश हो जाता है। धन्यवाद देने वाला मन धीरे-धीरे आनन्द से भर जाता है, प्रफुल्लता से,

आशा से। जो आशा से भर जाता है, वह आगे कदम उठा सकता है। जो निराशा से भर जाता है, उसके उठे हुए कदम भी पीछे लौटने लगते हैं। मैं आपसे कहूंगा, अपनी परिस्थितियों को खोजें कि क्या वहाँ कोई आशापूर्ण सम्भावना नहीं?

दूसरी बात, क्या चौबीस घण्टों में थोड़े- से क्षणों के लिए अपनी परिस्थिति से मुक्त हुआ जा सकता है? नींद रोज मुक्त कर देती है, आपकी सारी परिस्थितियां बाहर पड़ी रह जाती हैं। न आप गरीब रह जाते हैं, न अमीर रह जाते हें, न आप दुखी रह जाते हैं, न आप सुखी रह जाते हैं। नींद आपको कहीं ओर ले जाती हैं, जहाँ आप परिस्थितियों के बाहर हो जाते हैं। क्या थोड़ी देर के लिए जानते-बूझते परिस्थितियों के बाहर नहीं हुआ जा सकता? और स्मरण रहे, जो आदमी अपनी परिस्थितियों के बाहर थोड़े से क्षणों में सचेत रूप से हो जाता है, उसे यह पता चल जाता है कि वह तो हमेशा परिस्थितियों के बाहर हैं एक क्षण को भी परिस्थितियों का अतिक्रमण कर जाने पर यह पता चल जाता है कि मनुष्य की चेतना हमेशा परिस्थितियों से बाहर है। सांझ आती है, सुबह आती है, सूरज निकलता है, रात आ जाती है। आदमी के आसपास से सब गुजर जाता हे ओर आदमी हमेशा अलग खड़ा रह जाता हैं और गुजर जाती हैं, धूप आती है, शीत आती है, वर्षा आती है, गरमी आती है और मैं दूर खड़ा रह जाता हूँ, मैं पृथक् खड़ा रह जाता हूँ। चीजें आती हैं और बदल जाती हैं। जिस दिन एक क्षण को भी यह ख्याल होगा उसी दिन जीवनभर के लिए स्थिति बन जाती है। थोड़ी देर परिस्थितियों के बाहर होने की क्षमता जुटानी चाहिए कि परिस्थितियों के लिए रोते रहने से कोई भी फल नहीं मिलता। ध्यान का अर्थ इतना ही है कि हम परिस्थिति के बाहर जा रहे हैं थोड़ी देर को। ध्यान का यही अर्थ है- परिस्थितियों के बाहर उठ जाना, दूर हट जाना, ऊपर उठ जाना, परिस्थितियों के पार खड़े हो जाना, जैसे कोई हवाई जहाज ऊपर उड़ रहा हो। वृक्ष नीचे छूट जाते हैं, पहाड़ नीचे छूट जाते हैं। चेतना एक नयी दिशा में उड़ान लेना शुरू कर देती है, जब पता चलता है कि हम जिन परिस्थितियों से घिरे थे, उनमें घिरे तो जरूर थे, लेकिन घिरे होते हुए भी हमेशा बाहर थे। जैसे सूरज बदलियों में घिर जाये, ठीक वैसे ही मनुष्य की चेतना भी परिस्थितियों में घिरी है, लेकिन हमेशा बाहर है। यह बाहर होने का अनुभव ध्यान से उपलब्ध होता है। परिस्थितियों को दोष न दें, रास्ता निकालें, रासता जरूर मिल जाता है। ऐसी कोई भी जगह नहीं है जहाँ से प्रभु तक रास्ता न जाता हो। हो सकता है रास्ता थोड़ा पथरीला हो, थोड़ा ऊबड़-खाबड़ हो। हो सकता है थोड़ा टकराना पड़े, तोड़ना पड़े जीतना पड़े लड़ना पड़े, लेकिन ऐसी कोई भी जगह नहीं, जहाँ से उस तक रास्ता नहीं जाता हो और मैं अन्त में यह भी कह देना चाहता हूँ कि वे लोग जो थोड़ा कठिन रास्ते से गुजर कर आते हैं उनकी उपलब्धियों का मजा कुछ और ही है उनके पा लेने का आनन्द ही और है, उनके जीत लेने की, उनकी विजय की कथा और गौरव-गाथा और ही है। इसलिए घबराऐं मत। हो सकता है कठिन रास्तों से गुजरकर आप और भी मधुमय स्त्रोतों तक पहुँच जायें। जो चला जाता है, आशा और प्रतीक्षा से भरा हुआ है, वह अवश्य पहुँच जाता है।

किस परिस्थिति में शांति नामुमकिन है?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

साधक के लिए आशापूर्ण दृष्टि चाहिए। सामान्यतः हमारी दृष्टि बड़ी ही निराशापूर्ण हैं। हम चीजों को हमेशा अंधेरे हिस्से की तरफ से ही देखते हैं। हमेशा वहाँ से देखते हैं जहाँ चीजें दुखद, कष्टपूर्ण प्रतिकूल होने लगती हैं।

एक आदमी एक अजनबी गाँव में गया हुआ था। उसने जाकर पूछा-मैं फलां युवक को खोजने आया हूँ। मैंने सुना है कि वह बहुत अच्छी बांसुरी बजाता है। जिस आदमी ने उससे कहा था, उसने कहा। छोड़ो यह ख्याल, वह आदमी क्या बांसुरी बजायेगा? वह आदमी चोर है, बेईमान है, झूठा है। वह क्या बांसुरी बजायेगा, उस जैसा चोर आदमी हमारी बस्ती में नहीं है।

तो उसने कहा मैं फिर क्या पूछूं? मुझे तो उसकी खोज करनी है। क्या मैं यह पूछूं कि तुम्हारी बसती में जो सबसे ज्यादा चोर है वह कहाँ रहता है?

जवाब मिला कि इस तरह पूछोगे तो शायद पता चल भी सकता है।

उसने दूसरे आदमी से जाकर पूछा कि मैं इस गाँव में फलां आदमी को खोजने आया हूँ जो बड़ा चोर है, बेईमान है, झूठ बोलने वाला है। उस आदमी ने कहा मैं विश्वास भी नहीं कर सकता कि वह झूठ बोलता होगा, चोरी करता होगा। वह इतनी अच्छी बांसुरी बजाता है।

एक आदमी जो बांसुरी बजाता है, उसे कोई देखता है कि बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है तो वह कैसे चोरी कर सकता होगा तो कोई दूसरा देखता है कि चोर है। ऐसा बुरा चोर है तो बांसुरी कैसे बजाता होगा। हम कैसे देखते हैं, हम कहाँ देखते हैं? हम जीवन में, मनुष्य में, परिस्थितियों में, घटनाओं में क्या खोजते हैं? हम कोई प्रकाशपूर्ण उज्जवल पक्ष खोजते हैं? हम कोई प्रकाश की किरण खोजते हैं या अन्धकार की कोई धारा? हम जब फूलों के पास जाते हें तो कांटों की गिनती करते हैं या फूलों की? जब हम किसी मनुष्य के पास बैठते हैं तो हम उसके भीतर क्या देखते हैं, कोई प्रशंसा का द्वार या निन्दा की कोई गन्दी गली? हम क्या खोजते हैं? हमारीदृष्टि क्या है ओर जोदृष्टि हमारी होगी, धीरे-धीरे हमारे भीतर उसकी तरह का भाव घनीभूत होता चला जायेगा। साधक के लिए स्पष्ट रूप से आशावादीदृष्टि चाहिए। बहुत प्रकाशपूर्ण पक्ष को देखने की सामर्थ्य चाहिए। प्रत्येक स्थिति में वह खोज करे कि शुभ क्या है और घने-से-घने कांटों के जंगल में वह एक फूल भी खोज सके कि यह फूल है तो उसका रास्ता निरन्तर कांटों से मुक्त होता चला जाता है। रोज-रोज फूलों की ओर गहरे-से-गहरे मार्ग मिलते जाते हैं। हम जो खोजते हैं। वही हमें मिल जाए तो आश्चर्य नहीं है। वही हमें मिल जाते हैं जो हम खोजने निकल पड़े हैं, वहीं हमें मिल जाता है। थोड़ा अपनी परिस्थितियों पर विचार करना है। क्या उन परिस्थितियों में कोई भी अनुकूलता नहीं है? क्या उन परिस्थितियों में मैत्री की सम्भावना नहीं? क्या उन परिस्थितियों में कुछ भी नहीं है जो उस के द्वार को खोला जा सके? खोजेंगे तो पायेंगे, बहुत कुछ है, बहुत कुछ है। नहीं खोजेंगे या गलत चीज खोजेंगे तो पायेंगे, कुछ भी नहीं है।

क्या किसी खास परिस्थिति में शांत रहना मुश्किल है?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

एक घटना मुझे और स्मरण आती है। कोरिया में एक भिक्षुणी स्त्री, एक सन्यासिन एक रात गाँव में भटकी हुइ। पहुँची। रास्ता भटक गयी और जिस गाँव पहुँचना था वहाँ न पहुँचकर दूसरे गाँव पहुँच गयी थी। उसने जाकर एक द्वार खटखटाया। आधी रात थी। दरवाजा खुला, लेकिन उस गाँव के लोग दूसरे धर्म को मानते थे। वह भिक्षुणी दूसरे धर्म की थी। उस दरवाजे के मालिक ने दरवाजा बन्द कर लिया और उसने कहा। देवी! यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। हम इस धर्म को नहीं मानते हैं। तुम कहीं और खोज कर लो। इस गाँव में शायद ही कोई दरवाजा तुम्हारे लिए खुले, क्योंकि इस गाँव के लोग दूसरे ही धर्म को मानते हैं ओर हम तुम्हारे धर्म के शत्रु हैं। आप तो जानते हैं धर्म-धर्म आपस में बड़े शत्रु हैं। एक गाँव का अलग धर्म है, दूसरे गाँव का अलग धर्म है। एक धर्म वाले को दूसरे धर्म वाले के यहाँ कोई शरण नहीं, कोई आशा नहीं, कोई प्रेम नहीं।

द्वार बन्द हा जाते हैं। द्वार बन्द हो गये। उस गाँव के। उसने दो-चार दरवाजे खटखटाये, लेकिन दरवाजे बन्द हो गए। सर्द रात, अकेली स्त्री, वह कहाँ जाये, लेकिन धार्मिक लोगों ने मनुष्यता जैसी बात कभी सोची ही नहीं वे हमेशा सोचते हैं हिन्दू है। या मुसलमान, बौद्ध है या जैन। आदमी का कोई सीधा मूल्य उनकीदृष्टि में कभी नहीं रहा है।

उस स्त्री को वह गाँव छोड़ देना पड़ा। आधी रात वह जाकर गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो गयी। कोई दो घण्टे बाद ठण्ड के कारण उसकी नींद खुली। उसने आँख खोली। ऊपर आकाश तारों से भरा था। उस वृक्ष पर फूल

खिल गये। थे। रात में खिलने वाले फूलों की सुगन्ध चारों तरफ फैल गयी थी।, वृक्ष के फूल चटक रहे थे। आवाज आ रही थी और फूल खिलते चले जा रहे थे। वह आधी घड़ी तक मौन उन फूलों को, उस वृक्ष के फूलों को खिलते देखती रहीं आकाश के तारों को देखती रही। फिर दौड़ी गाँव की तरफ और जाकर उसने दरवाजों को खटखटाया जिन दरवाजों को उनके मालिकों ने बन्द कर लिया था। आधी रात फिर कौन आ गया। उन्होंने दरवाजें खोले, वहीं भिक्षुणी खड़ी थी। उन्होंने कहा। हमने मना कर दिया, यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं है। फिर दोबारा क्यें आ गयी हो?

लेकिन उस भिक्षुणी की आँखों से कृतज्ञता के आँसू बहे जाते हैं। उसने कहा। नहीं, अब द्वार खुलवाने नहीं आयी, अब ठहरने नहीं आयी, केवल धन्यवाद देने आयी हूँ। काश, तुम आज मुझे अपने घर में ठहरा लेते तो रात में आकाश के तारे और फूलों का चटक कर खिल जाना देखने से मैं वंचित रह जाती। मैं सिर्फ धन्यवाद देने आयी हूँ कि तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने द्वार बन्द कर लिया और मैं खुले आकाश के नीचे सो सकी। तुम्हारी बड़ी कृपा थी कि तुमने घर की दीवारों से मुझे बचा लिया और खुले आकाश में मुझे भेज दिया। जब तुमने भेजा था। तब तो मरे मन को लगा था, कैसे बुरे लोग हैं, अब मैं यह कहने आयी हूँ कि कैसे भले लोग हैं इस गाँव के। मैं धन्यवाद देने आयी हूँ, परमात्मा तुम पर कृपा करे। जैसी तुमने मुझे एक अनुभव की रात दे दी, जो आनन्द मैंने आज जाना है, जो फूल मैंने आज खिलते देखे हैं, जैसे मेरी भीतर ही कोई प्राणों की कली चिटक गयी हो और खुल गयी हो। जैसी आज अकेली रात मे मैंने आकाश के तारे देखे हैं, जैसे मेरी भीतर ही कोई आकाश स्पष्ट हो गया हो तारे खिल गये हों। में उसके लिए धन्यवाद देने आयी हूँ। भले लोग हैं तुम्हारे गाँव के।

परिस्थिति कैसी हैं, इस पर कुछ निर्भर नहीं करता, हम परिस्थिति को कैसे लेते हैं इस पर सब कुछ निर्भर करता है। हर एक व्यक्ति को परिस्थिति कैसी लेनी है, यह सीख लेना चाहिए। तब तो राह पर पड़े हुए पत्थर भी सीढ़ियाँ बन जाते हैं और जब हम परिस्थिति को गलत ढंग से लेने के आदी हो जाते हैं तो सीढ़ियां भी पत्थर मालूम पड़ने लगती हैं, जिनसे रास्ता रूकता है। पत्थर सीढ़ियां बन सकते हैं, दुर्भाग्य अवसर बन सकते हैं। हम कैसे लेते हैं, हमारे देखने कीदृष्टि क्या है, हमारी पकड़ क्या है, जीवन का कोण हमारा क्या है, हम कैसे जीवन को लेते और देखते हैं, इस पर निर्भर है।

आशा से भरककर जीवन को देखें। साधक अगर निराशा से जीवन को देखेगा तो गति नहीं कर सकता। आशा से भरकर जीवन का देखें। अधैर्य से भरकर अपने जीवन को देखेंगे तो साधक एकदम आगे नहीं बढ़ सकता। धैर्य से, अनन्त धैर्य से जीवन को देखें। उतावलेपन में जीवन को देखेंगे, शीघ्रता में भागे हुए तो साधक एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सकता है। प्रतीक्षा से जीवन को देखें, अनन्त प्रतीक्षा से, जो आज नहीं हुआ वह कल हो सकेगा, जो कल भी नहीं हो सकेगा। वह परसों हो सकेगा, प्रतीक्षा और आशा। मनुष्य के जीवन में अज्ञात के रास्ते पर जहाँ कोई माइल-स्टोन नहीं लगे हुए हैं, जिनसे पता चल सके कि हम कितना चल गये, जहाँ कोई भीड़ नहीं चलती, जिससे आश्वासन मिल सके कि हम कितना बढ़ गये, एकान्त के रास्ते पर। अकेले रास्ते पर जो मनुष्य प्रभु की तरफ जाता है वहाँ यदि अनन्त प्रतीक्षा उसके साथ न हो, आशा साथ न हो, जीवन को देखने का आनन्दपूर्णदृष्टिकोण साथ न हो, प्रार्थनापूर्ण मन साथ न हो तो फिर आगे बढ़ना बहुत कठिन हो जाता है।

कौन सी परिस्थिति में शांत होना असंभव है?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

यूनान के एक वजीर को उसके सम्राट ने फाँसी की सजा दे दी थी। सुबह तक ठीक था। दोपहर में वजीर का जन्म-दिन था। उसने एक बड़े संगीतज्ञ को बुलाया था। वह अभी-अभी अपनी वीणा लेकर हाजिर हुआ था। अब उसका संगीत शुरू होने को था। संगीतज्ञ के हाथ ढीले पड़ गये। वीणा उसने एक ओर टिका दी। मित्र उदास हो गये। पत्नी रोने लगी, लेकिन उस वजीर ने कहा। छह बजने में अभी बहुत देर है, तब तक गीत पूरा हो जायेगा। राजा ने बड़ी

कृपा की छह बजे तक कम-से-कम उसने फाँसी नहीं दी, लेकिन वीणा बन्द क्यों हो गयी, मित्र उदास क्यों हो गए? छह बजने में अभी बहुत देर है छह बजे तक कुछ भी बन्द करने की कोई जरूरत नहीं।

लेकिन मित्र कहने लगे। अब हम भोजन कैसे करें?

संगीतज्ञ कहने लगे। मैं वीणा कैसे बजाऊं? परिस्थिति बिल्कुल अनुकूल नहीं रही। वह आदमी हँसने लगा, जिसको फाँसी होने को थी। उसने कहा। इससे अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी। छह बजे मै मर जाऊंगा। क्या यह उचित न होगा कि मेरा घर एक उत्सव का स्थान बन जाये, क्योंकि सांझ छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है?

लेकिन वह आदमी कहने लगा। अनुकूल परिस्थिति और क्या होगी? जब छह बजे मुझे हमेशा के लिए विदा हो जाना है तो क्या यह उचित न होगा कि मैं विदा के क्षणों में संगीत सुनूं? क्या यह उचित न होगा कि मित्र उत्सव मनायें? क्या यह उचित न होगा कि उसका घर एक उत्सव बन जाये कि जाते क्षण उसकी स्मृति में हमेशा वे थोड़े से पल टिके हुए रह जायें जो उसने अन्तिम क्षण, विदाई के क्षण अनुभव किये थे।

और उस घर में वीणा बजती रही और उस घर में भोजन चलता रहा, यद्यपि लोग उदास थे, संगीतज्ञ उदास था, परेशान था। राजा को खबर मिली। राजा देखने आया कि वह वजीर पागल तो नहीं है और जब वह पुहँचा तो घर में वीणा बजती थी और मेहमान इकट्ठे थे और राजा जब भीतर गया तो वजीर खुद भी आनन्दमग्न बैठा था। राजा ने पूछा तुम पागल हो गये हो? खबर नहीं मिली कि शाम छह बजे तुम्हारी मौत आ रही है।

उसने कहा। खबर मिल गयी, इसलिए आनन्द के उत्सव को हमने तीव्र कर दिया। उसे शिथिल करने का तो सवाल नहीं था, क्योंकि छह बजे मैं विदा हो जाऊंगा तो छह बजे तक हमने आनन्द के उत्सव को तीव्र कर दिया है, ताकि विदा के अन्तिम क्षण स्मरण में रह जायें।

राजा ने कहा। ऐसे आदमी को फाँसी देना व्यर्थ है। जो आदमी जीना जानता है, उसे मरने की सजा नहीं दी जा सकती है। मैं यह सजा वापस लेता हूँ। ऐसे प्यारे आदमी को अपने हाथों से मारूं, यह ठीक नहीं।

जीवन में क्या अवसर है, क्या परिस्थिति है, यह इस बात पर निर्भर नहीं होता है कि परिस्थिति क्या है। यह इस बात पर निर्भर होता है कि हम उस परिस्थिति को किस भांति लेते हैं, किस एटीट्यूड में किसदृष्टि से। मुझे ज्ञात नहीं होता कि कोइ भी ऐसी परिस्थिति हो सकती है जो आपके जीवन में प्रभु की तरफ जाने से आपको रोकती हो। आप ही अपने को रोकना चाहत हैं तो बात दूसरी है। तब हर परिस्थिति रोक सकती है। और आप ही अपने को नहीं रोकना चाहेंगे तो कोई ऐसी परिस्थिति न कभी थी और न कभी हो सकती है। थोड़ा ध्यान से अपनीदृष्टि को देखने की कोशिश आप करें। परिस्थिति को दोष न दें। थोड़ा ध्यान करना इस बात पर कि मेरादृष्टिकोण, परिस्थिति को समझने की मेरी वृत्ति, मेरी अप्रोच, मेरी पहुँच तो कहीं गलत नहीं है। कहीं मैं गलत ढंग से तो चीजों को नहीं ले रहा हूँ।

किस परिस्थिति में शांति साधना कठिन है?

ओशो के द्वारा सुनाई इस बोध कथा से समझें--

एक मित्र ने पूछा कि क्या ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं। कि जिनमें हम साधना नहीं कर सकते हैं।

मैं ऐसी एक भी परिस्थिति नहीं जानता हूँ और कल्पना भी नहीं कर पाता हूँ कि जिसमें साधना न की जा सके। परिस्थिति की बात हमेशा आदमी का बहाना है और हम लोग बहाने ईजाद करने में बहुत कुशल हैं। जो हमें नहीं करना होता है, उसके लिए हम हमेशा बहाना ईजाद कर लेते हैं।

एक मन्दिर बन रहा था, आस-पास के गाँवों के सारे लाग श्रमदान कर रहे थे उस मन्दिर में आकर मन्दिर बनाने में मन्दिर के बनाने वालों ने प्रार्थना की थी गाँव-गाँव के लोगों से कि सभी आकर थोड़ा-थोड़ा मन्दिर बनायें। कोई एक

ईंट ले आये, कोई एक ईंट जोड़ दे, कोई एक पत्थर ले आये, कोई एक पत्थर रख दे, कोई मिट्टी ढो दे, ताकि सब लोगों के श्रम से बने वह मन्दिर। बड़े समझदार थे उस गाँव के लोग, क्योंकि जब एक आदमी मन्दिर बनाता है तो वह मन्दिर अहंकार का मन्दिर हो जाता है और जब हजारों लोग प्रेम से मिलकर कुछ बनाते हैं तो वह प्रेम ही उस स्थान को मन्दिर बना देता है। दूर-दूर से लोग उस मन्दिर को बनाने आये हुए थे। वह किसी एक आदमी के आस-पास पत्थर से बनने वाला मन्दिर नहीं था। काम शुरू हो गया था, लेकिन एक आदमी सुबह से ही आकर खड़ा हो गया है चुपचाप, उदास, वह कोई काम नहीं कर रहा है। वह एक पेड़ के नीचे चुपचाप खड़ा है। मन्दिर बनाने वाले दो-चार लोग उसके पास गये और बोले मित्र! तुम कुछ हाथ नहीं बटाओगे? तुम कछ सहयोग नहीं दोगे?

उस आदमी ने कहा। मैं भी चाहता हूँ कि प्रभु के मन्दिर में श्रम करूं, मैं भी चाहता हूँ कि यह आनन्द मुझे भी मिले, लेकिन भूखा पेट आदमी हो तो क्या कर सकता है। मैं भूखा पेट हूँ, भूखे पेट कैसे श्रम किया जा सकता है?

बात तो ठीक थी। वे लोग उसे अपने घर ले गए। उसे भरपेट भोजन कराया, फिर वे सब मन्दिर की तरफ वापस लौटे। ओर लोग तो मन्दिर में काम करने लग गये, वह आदमी फिर उसी वृक्ष के नीचे जाकर वैसा ही खड़ा हो गया जैसे सुबह खड़ा था। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वह फिर उदास, वहीं खड़ा था। उस ने एक पत्थर उठाया है, न एक ईंट उठायी हैं वे फिर उसके पास गये, आप फिर भी कोई सहायता नहीं कर रहे हैं?

उसने कहा। मैं भी चाहता हूँ कि प्रभु के मन्दिर में श्रम करूं, लेकिन वह भरे पेट है इसलिए श्रम नहीं कर सकता। अब यह आदमी कब श्रम करेगा?

कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि गरीब है, कोई इसलिए साधना नहीं कर पाता कि अमीर है। कोई इसलिए साधना की तरफ नहीं जा पाता है कि पेट खाली है, कोई कहता है कि पेट भरा है इसलिए हम उस ओर नहीं जा पाते। मुझे हर परिस्थिति के लोग मिलते हैं और मैंने पाया कि वे सब लोग कहते हैं कि हमारी परिस्थिति ही ऐसी है कि हम कुछ करने में समर्थ नहीं है। अब तक मुझे एक भी ऐसा आदमी नहीं मिला है। जिसने यह कहा हो कि मेरी परिस्थितियाँ असली कारण नहीं है। असली कारण जो हम नहीं करना चाहते हैं उसके लिए हमेशा 'जस्टीफिकेशन' उसके लिए हमेशा ही न्यायमुक्त कारण खोज लेते हैं और निश्चिन्त हो जाते हैं। ऐसी कौन-सी परिस्थिति है जिसमें आदमी प्रेमपूर्ण न हो सके? ऐसी कौन-सी परिस्थिति है जिसमें आदमी थोड़ी देर के लिए मौन और शान्ति में प्रविष्ट न हो कसे? हर स्थिति में, हर परिस्थिति में वह होना चाहे तो बिल्कुल हो सकता है।

क्या व्यक्ति की मनस्थिति केवल परिस्थिति की उपज नहीं है?

व्यक्ति केवल परिस्थिति की उपज नहीं है।

वही परिस्थिति रावण भी पैदा करती है और वही परिस्थिति राम भी पैदा करती है। आज परिस्थिति दुनिया में एक है, लेकिन तीन अरब आदमी हैं। तीन अरब ढंग के आदमी। माना कि वे परिस्थिति की उपज होते हैं, लेकिन एकदम परिस्थिति की ही उपज नहीं होते। हम भी रोपे, जो परिस्थिति को उपजाता रहता है, वह भी होता है हमारे जीवन में। परिस्थिति ही हमारा चुनाव है। परिस्थिति को भी हम बदलते हैं। परिस्थिति को बदलने में अपने गुण बदलते हैं और निर्धारक होते हैं। तो कोई व्यक्ति निपट परिस्थिति की उपज नहीं है।

शांति हेतु परिस्थिति नहीं, मनस्थिति बदलो--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं?

परिस्थिति नहीं, मनस्थिति को बदलो।

जग से भागने की बात नहीं है। जग में ही जागने की बात है। परिस्थिति तो छोड़कर भाग गये, मनस्थिति को कहां छोड़ोगे? मन तो साथ ही चला जाता है। धन के ढेर लगे हों तुम्हारे चारों तरफ और तुम्हारे मन में धन की कोई चाहत न हो तो अलिप्तता। भाग गए जंगल तो धन से भाग गए लेकिन अलिप्तता तो नहीं इससे पैदा हो जाएगी। शायद भागने का सारा आधार ही तुम्हारी लिप्तता का भय है। तुम डरते हो तुम डरते हो कि अगर धन हुआ तो मैं लिप्त

निश्चित हो जाऊंगा। अगर स्त्री हुई तो मैं प्रेम में पड़ जाऊंगा। अगर मित्र हुए तो मोह में बंध जाऊंगा। छोड़ के सब भाग गए हो। लेकिन परिस्थिति से भागने से कहीं मनस्थिति बदली है कभी बदली है कभी नहीं बदली है।

ओशो ने मानसिक एवं आत्मिक अशांति को विकास का लक्षण क्यों बताया?

मानसिक अशांति विकास का लक्षण है। आत्मिक अशांति और बड़ा विकास है।

आदिवासियों में मानसिक अशांति नहीं। मानसिक अशांति तब बढ़ती है जब शरीर की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं, उसके पहले नहीं बढ़ती है। जानवरों में मानसिक अशांति नहीं होती है। लेकिन इसलिए हम जानवर होना पसंद न करेंगे। आदिवासियों में मानसिक अशांति नहीं होती है, लेकिन हम आदिवासी होना पसंद न करेंगे। जब शारीरिक अशांति मिटती है तो मनासिक अशांति शुरू होती है। मानसिक अशांति एक अर्थ में विकास है। मन की भी सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो आत्मिक अशांति शुरू होती है। वह और बड़ा विकास है। ध्यान रहे, अशांतियों के भी तल हैं। शारीरिक अशांति निकृष्टतम अशांति है। मानसिक अशांति उससे ऊंची अशांति है। आध्यात्मिक अशांति और भी ऊंची अशांति है। और ध्यान रहे, जिस तल पर हम शांत होंगे उसी तल पर शांत हो सकते हैं। जिस तल पर हम अशांत भी नहीं हुए उस तल पर हम शांत कैसे होंगे? अमरीका शरीर के तल पर शांत हुआ है तो मन के तल पर अशांत हुआ है। यह मनुष्य के एवोल्यूशन का दूसरा कदम है। बेचैन हैं, तकलीफ है, लेकिन ध्यान रहे, जब वे मानसिक रूप से अशांत हुए हैं तो वे मानसिक शांति की तलाश में लग गए हैं। बहुत जल्द वे सारे उपाय खोज लेंगे जिनसे मन में शांति हो जाए। मेरे पास लोग आते हैं। वे पहले आते हैं कि हमें ध्यान सीखना है, बहुत अशांति है। फिर कुछ दिन मेरे पास रुकते हैं, मैं उनसे और बात करता हूं तो पता चलता है, किसी को लड़की की शादी करनी है असल में, इसलिए अशांति है।

भगवान से भी हाथ जोड़ कर पता है क्या मांगते हैं वे? अगर हम आदमी, जो मंदिर में हाथ जोड़े खड़े हैं उनको ऊपर से देख कर लौट आए तो हम समझेंगे कि बड़े धार्मिक आदमी हैं। हो सकता है वे भीतर कह रहे हों कि मेरा जिससे प्रेम है उसी से विवाह करवा दिया जाए। नौकरी नहीं मिल रही है, नौकरी दिलवा दी जाए। रिटायरमेंट हुआ जा रहा है और दो चार साल नौकरी चल जाए तो अच्छा है। शादी नहीं हो रही है बच्चे की--तो बच्चे की शादी हो जाए। बीमारी है, बीमारी दूर हो जाए। असल में जीवन में ऊंची अशांतियां पैदा होनी शुरू होती हैं। एक जंगली आदमी है, उसको अगर संगीत सुनने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। उसे अगर कालिदास और शेक्सपीयर पढ़ने को न मिले तो कोई अशांति न होगी। सौभाग्यशाली हैं वे, जिनको नीचे की अशांतियां शांत हो गई हैं और ऊंची अशांतियों ने जिन्हें पकड़ लिया है। जितना मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से अविकसित आदमी होगा उतनी आत्महत्या नहीं करता। आदिवासी आत्महत्या नहीं करते हैं। जितनी जंगली कौम होगी, जितनी गहरे जंगल में रहती होगी, जितनी प्राचीन होगी, आत्महत्या नहीं करेगी।

क्या अमीरी की अशांति बेहतर है गरीबी की शांति से?

भौतिकवाद की अशांति बेहतर गरीबी की शांति से

पश्चिम में मैटीरियलिज्म है, वहां भी बड़ी अशांति है? भारत इस तरह की बातें सुन कर बड़ी तृप्ति अनुभव करता है। अच्छा वे भी अशांत हैं, तो फिर ठीक है, हम भी अशांत हैं तो क्या हर्जा है। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, गरीब की अशांति में और अमीर की अशांति में बुनियादी फर्क है। गरीब की अशांति अभाव की अशांति है। और अभाव की अशांति बहुत खतरनाक है। अमीर की अशांति अभाव की नहीं, अतिरेक की, एफ्लुअंस की अशांति है। और अतिरेक की अशांति बहुत सौभाग्य है। हम तो प्रार्थना भी रोटी के लिए होती है। गरीब आदमी की प्रार्थना भी पदार्थ के लिए ही हो सकती है, परमात्मा के लिए कैसे होगी? हिंदुस्तान के तीर्थंकरों का इतिहास उठा कर देखें। जैनियों

के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के हैं। हिंदुओं के भगवान सब राजाओं के लड़के हैं। धर्म समृद्ध जीवन से पैदा होता है। मेरे हिसाब में धर्म जो है, समृद्धि की आखिरी लक्जूरी है।

ओशो के अनुसार शांति प्राप्त करने के दो प्रमुख उपाय क्या हैं?

शांति के दो उपाय हैं, साक्षी या स्वीकृति।

परम अनुभूति के पाने की दो विधियां हैं। एक, दोनों को छोड़ दें--यह संन्यासी का मार्ग है। दोनों को पकड़ लें--यह गृहस्थ का मार्ग है। दो उपाय हैं। या तो दोनों छोड़ दें--सुख भी, दुख भी; शांति भी, अशांति भी--फिर आपको कोई अशांत न कर सकेगा। या दोनों पकड़ लें। दोनों पकड़ना सहज-योग है। दोनों के लिए राजी हो जाएं। मांग ही छोड़ दें। कह दें, जो होता है, मैं राजी हूं। लाओत्से ने कहा है, हवाएं पूरब की तरफ ले जाती हैं सूखे पत्ते को, तो पत्ता पूरब चला जाता है। और हवाएं बदल जाती हैं, पश्चिम की तरफ बहने लगती हैं, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। ऐसा समझें, दुखी आदमी का लक्षण है, वह कहता है, ऐसा हो, तो मैं सुखी होऊंगा। उसकी कंडीशन है। दुखी आदमी की शर्त है। इसका थोड़ा प्रयोग करके देखें, चैबीस घंटे, ज्यादा नहीं। लड़ने का प्रयोग तो आप हजारों जन्मों से कर रहे हैं। एक चैबीस घंटे तय कर लें कि आज सुबह छः बजे से कल सुबह छः बजे तक, जो भी होगा, उसको मैं स्वीकार कर लूंगा। जरा भी विरोध, द्वंद्व खड़ा नहीं करूंगा। कोई विधि नहीं है शांत होने की, शांत होना जीवन-दृष्टि है। शांत हो जाएं। कैसे? अशांति को स्वीकार कर लें। दुख को स्वीकार कर लें। मृत्यु को स्वीकार कर लें, फिर आपकी कोई मृत्यु नहीं है। जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं।

क्या नियति की धारणा में छिपी है शांति की कुंजी?

नियति की धारणा में है शांति की कुंजी।

नियति के अलावा कोई भी उपाय मन को शांत करने का नहीं है। मन अशांत होता है, नियति का विचार कहेगा, उस अशांति को भी स्वीकार कर लें। उसके विपरीत शांत होने की कोशिश मत करें। उदासी को स्वीकार कर लें, और आप पाएंगे शीघ्र ही कि उदासी विलीन हो गई है। उसकी स्वीकृति में ही उसका अंत है। दुख से राजी हो जाएं और फिर देखें कि दुख कैसे टिक सकता है। अशांति को स्वीकार कर लें और आप शांत हो जाएंगे। मैं रोज न मालूम कितने लोगों को इस संबंध में इस उलझन में पड़ा हुआ देखता हूं। जिस दिन से आपको ख्याल हो जाता है कि शांत कैसे हों, उस दिन से आपकी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांति तो है ही, अब एक नई अशांति भी शुरू हो गई कि शांत कैसे हों! और अशांत आदमी कैसे शांत हो सकता है? और अशांत आदमी पूजा भी करेगा, तो उसकी अशांति ही होगी उसकी पूजा में प्रकट। और अशांत आदमी ध्यान भी करेगा, तो उसका ध्यान भी उसकी अशांति से ही निकलेगा।

अशांत आदमी मंदिर भी जाएगा, तो अपनी बेचैनी को साथ ले जाएगा। अशांत गीता भी पढ़ेगा, तो करेगा क्या? अशांति से अशांति ही निकल सकती है। इसलिए आप कुछ भी करें, करेगा कौन? वह जो अशांत है, वही कुछ करेगा। ऐसा समझें कि एक आदमी पागल है और वह अब ठीक होने की कोशिश कर रहा है--खुद ही। वह क्या करेगा? वह थोड़ा ज्यादा पागल हो सकता है, और कुछ भी नहीं कर सकता। नियति का विचार यह कहता है कि आप कुछ करें मत। आप कर नहीं सकते कुछ, आप सिर्फ राजी हो जाएं। जिस दुख के लिए हम राजी हो गए, वह दुख कहां रहा? अभी कुछ ही दिन पहले एक महिला मेरे पास आई। उसके पति मर गए हैं----उसकी अभी मुझे खबर मिली है कि वह हल्की हो गई है। फिट बंद हो गए हैं। उसने रो लिया; हृदय भरकर दुखी हो ली। उसने स्वीकार कर लिया, दुख मेरी नियति है। जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं। अशांत हैं, अशांति को स्वीकार कर लें। लड़ें मत। फिर देखें, क्या होता है।

क्या शांति भी दो तरह की होती है?

शांति दो तरह की होती हैः जीवंत या मुर्दा।

मरघट पर एक शांति है। लेकिन वह कब्रों की शांति है। वह शांति इसलिए है कि वहां कोई है ही नहीं जो अशांत हो सके। बुद्ध एक गांव के बाहर ठहरे थे दस हजार भिक्षुओं को लेकर। वह बुद्ध के पास जब गया तो उनके चरणों में सिर रख कर वह कहने लगा, मैं हैरान हूं, दस हजार लोग! दस हजार लोग बैठे हैं वहां वृक्षों के नीचे और वहां परिपूर्ण सन्नाटा है जैसे कोई न हो!

कृष्ण कहते हैं कि ठीक रूप से हो गया है मन शांत जिसका, वही ध्यान में डूब सकता है। ऐसी शांति भी हो सकती है, जो ठीक से शांति न हो। ऐसी बहुत-सी विधियां प्रचलित हैं, जिनसे आपको शांति का भ्रम पैदा हो सकता है। वह गलत रूप की शांति है। जैसे इस तरह की हिप्नोटिज्म, सम्मोहन की विधियां हैं, जिनसे आपको प्रतीति हो सकती है कि आप शांत हैं। जब भी स्मरण आ जाए, दोहराना, मैं शांत हो रहा हूं। इस भांति अगर आप दोहराते रहें, तो आप अपने को आटो-हिप्नोटाइज कर लेंगे। मन की यह क्षमता है कि मन अपने को धोखा दे सकता है। उस तरह की शांति झूठी है, जो कुवे की पद्धति से आती है। लेकिन वह शांति होगी बस, जबर्दस्ती की शांति। भीतर उबलता हुआ तूफान होगा। भीतर जलती हुई आग होगी। ठीक ज्वालामुखी भीतर उबलता रहेगा और ऊपर सब शांत मालूम पड़ेगा। ऐसे शांत बहुत लोग हैं, जो ऊपर से शांत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इनके भीतर बहुत ज्वालामुखी है, उबलते रहते हैं। हां, ऊपर से उन्होंने एक व्यवस्था कर ली है। जबर्दस्ती की एक डिसिप्लिन, एक आउटर डिसिप्लिन, एक बाह्य अनुशासन अपने ऊपर थोप लिया है। किसका होता है ठीक रूप से फिर शांत मन? ठीक रूप से शांत उसका होता है, जो शांति की चेष्टा ही नहीं करता, वरन ठीक इसके विपरीत अशांति को समझने की चेष्टा करता है। जो व्यक्ति अपने भीतर की अशांति के ऊपर शांति को आरोपित करता है, वह गलत ढंग की शांति को उपलब्ध होता है। वह ध्यान में नहीं ले जाने वाली है। फिर ठीक ढंग की शांति का अर्थ हुआ, जो व्यक्ति अपने भीतर के अशांति के कारणों को समझता है। एक आदमी कहता है कि मुझे शांत होना है, लेकिन अहंकार का पोषण किए चला जाता है। अब उसको कोई कहे कि वह शांत होगा कैसे! इसलिए कृष्ण जब कहते हैं, ठीक रूप से शांत हो गया मन जिसका, तो वे कहते हैं कि जिसने अशांत होने के कारण छोड़ दिए हैं। आप कहते हैं, शांत कैसे हो जाएं? तो गलत पूछते हैं। आप इतना ही पूछें कि अशांत कैसे हो गए? कहां-कहां आपने अटकाया है चित्त को, वहां-वहां से हटा दें। ठीक रूप से शांत हुआ चित्त वह है, जिसके भीतर अशांति के कोई कारण न रहे--तब। अन्यथा आप जो भी करेंगे, वह सब गैर-ठीक रूप से हुई शांति होगी।

महत्वाकांक्षा, अशांति की मां है--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं?

महत्वाकांक्षा से अशांति का जन्म

कामना जड़ है अशांति की, शांति की इच्छा भी अशांतिदायी है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, शांत हो मन! लेकिन उनकी सब आकांक्षाएं अशांति की हैं। एक युवक मेरे पास आया। विश्वविद्यालय की किसी बड़ी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहा है। उसने मुझे कहा कि मन बड़ा अशांत है। और इसीलिए आपके पास आया हूं। अगर शांत हो जाऊं, तो यह प्रथम आने का काम पूरा हो जाए। अशांति में तो यह न हो सकेगा। अब बड़ी उपद्रव की बात है। वह चाहता है शांति, ताकि महत्वाकांक्षा पूरी हो सके। और महत्वाकांक्षा से ही अशांति पैदा हो रही है। अन्यथा अशांति का कोई कारण नहीं है। मैंने कहा, तू ठीक से तय कर ले। अगर महत्वाकांक्षा चाहिए, तो अशांत होने की हिम्मत चाहिए।

मैं नहीं कहता कि तू महत्वाकांक्षा छोड़। फिर अशांति को स्वीकार कर। वह उसका हिस्सा है। और अगर शांति चाहिए, तो महत्वाकांक्षा को छोड़। फिर वह साहस कर। वह शांति का अनिवार्य हिस्सा है।

मन के चुप होते ही शांति प्रगट हो जाती है--ओशो ऐसा क्यों कहते हैं?

मन के चुप होते ही भीतर की शांति प्रगट हो जाती है।

एक प्रियजन आपको मिला, एक क्षण को हृदय की धड़कन रुक गई, एक क्षण को मन के विचार रुक गए, आपने उसे गले से लगा लिया। एक क्षण को सब रुक गया और आत्मा की झलक भीतर प्रवेश कर गई। पर एक ही क्षण को। फिर मन काम शुरू कर दिया। संगीत सुन कर जो क्षण भर को मन शांत हो जाए, तो झलक भीतर से उतरनी शुरू हो जाती है। और आप सोचते होंगे कि सितार के बजने से मिल रही है वह शांति, तो आप गलती में हैं। सितार के बजने से केवल एक अवसर उपस्थित हुआ है और मन मुक्त हो गया और चुप हो गया है। मन के चुप होते ही भीतर की शांति उतर आई है। शांति सदा भीतर से उतरती है, आनंद सदा भीतर से उतरता है। लेकिन मन के पीछे आत्मा भी है। और इस आत्मा की जो दिशा है, इस आत्मा को उपलब्ध कर लेने का जो मार्ग है, इस आत्मा में प्रवेश हो जाने की जो चित्त-दशा है, वही चित्त-दशा आनंद को, शांति को, आलोक को उपलब्ध कराती है।

शरीर, मन, आत्मा के तलों पर अशांति के कौन-कौन से रूप हैं?

शरीर, मन, आत्मा के तलों पर — कष्ट, ऊब, बेचैनी

अशांति की वजह वस्तुओं का अभाव नहीं। अगर कोई आदमी समझता हो कि मैं इसलिए अशांत हूं कि मेरे पास धन नहीं है, तो वह गलती में है। धन मिल जाएगा और अशांति कायम रहेगी। कोई आदमी समझता हो कि मेरे पास बहुत बड़ा मकान नहीं है इसलिए अशांत हूं। मकान मिल जाएगा और अशांति कायम रहेगी, बल्कि अशांति थोड़ी बढ़ जाएगी। इसलिए दरिद्र की बेचैनी उतनी कभी नहीं होती जितनी समृद्ध की बेचैनी होती है। इसीलिए जितना समाज धनिक होता चला जाता है, उतना ही समाज ज्यादा अशांत होता चला जाता है। लेकिन कुछ होने और न होने से शांति और अशांति का कोई संबंध नहीं है। मनुष्य के जीवन में शरीर है, मन है, आत्मा है। शरीर की जरूरतें हैं। अगर वे पूरी न हों, तो जीवन कष्टपूर्ण हो जाता है। यह हो सकता है, एक आदमी कष्ट में हो और अशांत न हो। और यह भी हो सकता है, एक आदमी बिल्कुल कष्ट में न हो और अशांत हो। गरीब आदमी कष्ट में होता है। समृद्ध आदमी अशांति में होता है। अगर पैर में कांटा गड़ा है तो तकलीफ होती है और पैर में कांटा न गड़ा हो तो कोई आनंद नहीं होता। मन के तल पर जो सुख होते हैं, वे क्षण भर के लिए होते हैं, उससे ज्यादा कभी नहीं हो पाते। क्योंकि मन को जो सुख एक बार मिला, उसकी पुनरुक्ति से उसे सुख नहीं मिलता। सुकरात ने कहा कि मैं एक असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करूंगा बजाय एक संतुष्ट सुअर के। हममें से जो लोग शरीर के तल पर ही संतुष्ट हो जाते हैं, उनकी स्थिति पशुओं से बहुत भिन्न नहीं हो सकती। मनुष्य का अर्थ हैः मन के तल पर अशांत होना। और देवता का अर्थ हैः आत्मा के तल पर शांत हो जाना।

ओशो ऐसा क्यों कहते हैं कि अशांति रोग नहीं, एक लक्षण है?

अशांति रोग नहीं, एक लक्षण है।

शांति लक्ष्य नहीं, एक लक्षण है।

शांत मन खबर देता है इस बात की कि हम जिस दिशा में चल रहे हैं वही दिशा जीवन की सम्यक दिशा है। अशांत मन खबर देता है इस बात की कि हम जहां चल रहे हैं वह जगह चलने की नहीं। एक आदमी को बुखार है, शरीर उत्तप्त है, गरम है। शरीर की गर्मी बीमारी नहीं है, शरीर की गर्मी केवल खबर है कि शरीर के भीतर कोई बीमारी है। शरीर गर्म नहीं है तो खबर मिलती है कि शरीर के भीतर कोई बीमारी नहीं है। गर्मी खुद बीमारी नहीं है, केवल बीमारी की खबर है। बुखार मित्र है, खबर देता है कि भीतर बीमारी है; बीमारी की खबर लाता है। शांति को मत चाहिए और अशांति को दूर करने की कोशिश मत करिए। अशांति को समझिए और जीवन को बदलिए।

ओशो इसे गलत सवाल क्यों कहते हैं कि शांति कैसे पाई जाए?

गलत सवाल--शांति कैसे पाई जाए?

ठीक सवाल--अशांति कैसे छोड़ी जाए?

अशांत मन कैसे शांति को खोजेगा? अंधेरा प्रकाश को खोजने चला जाए, तो कैसे पाएगा? अशांत मन कभी शांति को नहीं पा सकता। मैं यह नहीं बता सकता कि शांति कैसे पाई जाए, मैं यह बता सकता हूं कि अशांति कैसे छोड़ी जाए। एक डाक्टर के पास आप जाएं, और कहें मुझे स्वास्थ्य चाहिए तो वह क्या करेगा? वह कहेगा आप कहीं और जाएं, हम तो बीमारियों को मिटाते हैं, स्वास्थ्य नहीं देते। एक व्यक्ति मेरे पास आए, उन्होंने कहा कि मुझसे किसी ने कहा, राम-राम जपो; किसी ने कहा, माला फेरो; किसी ने कहा, सब भगवान पर छोड़ दो, भाग्य से सब होता है। तो मैंने कहा बेहतर है आप रुक जाएं। उन्होंने अपने मन की बातें कहनी शुरु कीं। अशांति थी कि उनके लड़के ने एक ऐसी लड़की से विवाह कर लिया, जो उनकी जात की नहीं है। अशांति थी, कि उनकी पत्नी यद्यपि अब वो बूढ़े हो गए, अब भी उनकी आज्ञा नहीं मानती। अशांति थी कि मरने के बाद क्या होगा? क्योंकि वह बड़े ठेकेदार हैं और जिंदगी में बहुत पाप किया है। जिस दिन चित्त में कोई कारण नहीं रह जाते हैं अशांत होने के, उस दिन जो शेष रह जाती है घटना वह शांति है। अशांति के विरोध में शांति नहीं है। अशांति के अभाव में शांति है।

क्या जिस ढंग से अशांति जन्मी, उसके उलटे ढंग से शांति मिल सकती है?

जिस ढंग से तुमने अशांति पैदा की है, उससे उलटे ढंग से शांत हो जाओगे।

शांति को सीधा मत खोजो, अशांति के कारणों को पहचानो। तुम अशांत होने किसके पास पूछने गए थे? किस गुरु से तुमने अशांति की दीक्षा ली है? किस आश्रम में गए थे, जहां तुमने अशांति का पाठ सीखा? फिर किसी गुरु से पूछता हूं, कृपा हो जाए, प्रसाद मिल जाए भगवान का कि चित्त शांत हो जाए। अशांति के कारण भी नहीं बदलना है और शांत भी होना है। यह असंभव है। क्रोध को जानना, पहचानना, क्रोध को देखना, समझना और क्रोध विलीन हो जाएगा।

क्या अशांति के कारण समझ कर ही शांति मिल सकती है?

अशांति के कारण समझो, शांति के नियम जानो।

ईश्वर या मोक्ष मत खोजो, अपनी शांति की अभीप्सा को पहचानो। लोग कहते हैं, ईश्वर को पाने से शांति मिलेगी, यह बिल्कुल गलत कहते हैं। असली बात उलटी है। असली बात यह है कि जो शांत हो जाता है उसे ईश्वर मिलता है। दुनिया में 3000 धर्म हैं। अगर मनुष्य के चित्त की शांति को केंद्र बनाते हैं तो दुनिया में एक धर्म होगा, तीन सौ धर्म नहीं हो सकते, क्योंकि मन की अशांति लाने के नियम अलग नहीं हो सकते। धर्म क्यों इतने अलग-अलग हो गए? धर्म के अलग होने का कारण था कि धर्म को हमने हवाई बातों पर केंद्रित कर दिया। शांति लाने के नियम और सूत्र तो समान हैं। जब तक हम अवास्तविक प्रश्नों से जोड़ेंगे तब तक धर्म कभी विज्ञान नहीं बन सकता। ध्यान रहे, आनेवाली दुनिया विज्ञान की होगी। अगर धर्म वैज्ञानिक बनता है तो वह टिकेगा, अन्यथा उसके दिन लद चुके। अशांति के नियम तो जाहिर हैं। दुनिया में किसी को भी अशांत होना हो तो उन्हीं नियमों का पालन करना पड़ेगा, और शांत होना हो तो भी।

समता-भावना का वास्तविक अर्थ क्या है?

समता का अर्थ शांति और अशांति के भीतर तीसरे को जान लेना है।

स्थायी समता साक्षी से उपलब्ध होती है। जब घर में आग लगी हो और लपटें पकड़ लें, तो आदमी छलांग लगा कर बाहर हो जाता है। फिर रास्ता नहीं पूछता। जहां आंख पड़ जाती है, वहीं रास्ता बना लेता है। गुरजिएफ कहता था कि पहले तुम ठीक से क्रोध ही कर लो। तो क्रोध सिखाता था कि कैसे क्रोध करो और क्रोध में कैसे पूरे उतर जाओ। कुछ भी मत रोको। हैरानी की बात है, क्रोध के पीछे बड़ी शांति अनुभव होती है। जब एक आदमी देखता है कि क्रोध के बाद शांति आ जाती है, शांति के बाद क्रोध आ जाता है; सुबह के बाद सांझ आती है, सांझ के बाद सुबह आ जाती है; अंधेरा होता है, प्रकाश होता है, फिर अंधेरा हो जाता है; जब एक आदमी यह अनुभव कर पाता है कि यह द्वंद्व का खेल मेरे चारों तरफ चलता ही रहता है, तब उसे तत्काल एक और नई बात पता चलती है कि मैं इन दोनों से अलग हूं। समता का अर्थ शांति नहीं है। समता का अर्थ शांति और अशांति के भीतर तीसरे को जान लेना है। शांति तो सभी चाहते हैं। जितने जोर से चाहते हैं, उतनी अशांति सिर पर टूट जाती है। समता कीमती शब्द है। समता का अर्थ हैः अशांति है, तो वह जानता है कि अशांति है; और शांति है, तो वह जानता है कि शांति है। समता का अर्थ हैः वह अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक। अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक, क्योंकि वह जानता है, जीवन का नियम है, सुबह होती है, सांझ होती है। इस साक्षी-भाव में समता घटित होती है। वह समता स्थिर है; क्योंकि अशांति उसे मिटा नहीं सकती और शांति उसे ज्यादा नहीं करती। वह दोनों के बीच स्थिर है।

भगवान कृष्ण के अनुसार समता भाव की साधना कैसे संभव है?

समता भाव--कुछ वांछनीय और कुछ अवांछनीय नहीं,

गीता दर्शन तेहरवां अध्याय, नौवां श्लोक। पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल के प्राप्त होने पर हर्ष-शोकादि विकारों का न होना। दुख हो या सुख, प्रिय घटना घटे या अप्रिय, सफलता हो या असफलता, यश या अपयश, दोनों का बराबर मूल्य है। दोनों में से किंचित भी एक को वांछनीय और एक को अवांछनीय न मानना ज्ञानी का लक्षण है। समत्व ज्ञानी की आधारशिला है। यह समता कैसे घटेगी? इसके घटने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया ख्याल में लेनी चाहिए। कोई भी अनुभव भीतर पैदा हो, उसे अचेतन पैदा न होने दें। उसमें सजगता रखें। कोई गाली दे, तो इसके पहले कि क्रोध आए, एक पांच क्षण के लिए बिल्कुल शांत हो जाएं। क्रोध को कहें कि पांच क्षण रुको। दुख को कहें, पांच क्षण रुको। पांच क्षण का अंतराल देना जरूरी है। तो आपके पास पर्सपेक्टिव, दृष्टि पैदा हो सकेगी। पांच क्षण बाद सोचें कि मुझे दुखी होना है या नहीं। दुख को चुनाव बनाएं। दुख को मूर्च्छित घटना न रहने दें। नहीं तो फिर आप कुछ भी न कर पाएंगे।

क्या स्वीकार भाव से अशांति विसर्जित हो सकती है?

तथाता--स्वीकार भाव से अशांति विसर्जित।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि किसी तरह अशांति के बाहर निकाल लें। मैं उनसे कहता हूं कि तुम अशांति को स्वीकार कर लो। इस मन की व्यवस्था को समझें। मन अशांत है, तुम कहते हो शांत होना चाहिए। मन तो अशांत था, एक और नई अशांति तुमने जोड़ी कि अब शांत होना चाहिए। जो आदमी साधारणतः अशांत है और शांति की झंझट में नहीं पड़ा है, वह उस आदमी से ज्यादा शांत होता है जो शांत होना चाहने की झंझट में पड़ गया है। सांसारिक व्यक्ति उतने अशांत नहीं हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में झुके लोग, पूजागृहों में बैठे लोग, तपश्चर्या उपवास करते लोग तुम्हें जितने अशांत दिखाई पड़ेंगे उतने तुम्हें साधारण लोग, होटलों में बैठे, चाय पीते, अखबार पढ़ते, उतने अशांत न दिखाई पड़ेंगे। शांत होने का सिर्फ एक ही रास्ता रहा है दुनिया में और वह यह है कि जो अपनी अशांति को भी शांति

से स्वीकार कर लेता है अशांति को भी जो उसकी परिपूर्णता में स्वीकार लेता है, और कहता है, आ जाओ, रहो, तुम भी मेहमान बन जाओ इसी घर में, उसी दिन अचानक पाता है कि अशांति विदा हो गई। अशांति पैदा होती है अस्वीकार की वृत्ति से। फिर चाहे वह अस्वीकार अशांति का ही क्यों न हो। जो कहता है, अशांति को स्वीकार नहीं करेंगे, वह अशांत होता चला जाएगा। जो अशांति में भी राजी हो गया, उसके लिए शांति के द्वार खुल जाते हैं।

हम कैसे पता लगाएं कि प्रभु का आदेश क्या है?

जपुजी साहब में गुरु नानक पूछते हैं--सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले। अर्थात् वह द्वार कहां है, वह घर कहां है, जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है?

नानक बड़े मधुर शब्दों में कहते हैं--

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले।

वह द्वार कहां है, वह घर कहां है, जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है? तेरे घर का द्वार कहां खोजूं? जिसके भीतर छिपा, तू सबको सम्हाले हुए है। और उत्तर देते हैं--

बाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥

केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे।

अर्थात् अनेक नाद बज रहे हैं, और कितने असंख्य बजाने वाले हैं। असंख्य गायक हैं, अनंत राग-रागिनियां हैं। पानी और अग्नि और पवन यश गा रहे हैं। धर्मराज तेरे द्वार पर बैठ कर गीत गा रहे हैं। चित्रगुप्त भी, शिव, ब्रह्मा, देवी सभी तेरा गान कर रहे हैं। इंद्रासन पर बैठे इंद्र गाते हैं। देवता तेरे द्वारों पर बैठे गाते हैं। समाधि में बैठ कर सिद्ध और ध्यान में बैठ कर साधु गाते हैं।

नानक पूछते हैं, कहां तेरा द्वार? कहां तेरा घर? और तत्क्षण कहते हैं, अनेक नाद बज रहे हैं, कितने असंख्य बजाने वाले हैं।

नानक कह रहे हैं, नाद तेरा द्वार है। नाद में छिपा ही तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। ओंकार तेरा द्वार। उसी में छिपा हुआ तू सारे जगत को सम्हाले हुए है। और अगर गीत की एक कड़ी तुम्हें पकड़ जाए, तो उस धागे को पकड़ कर तुम उस परमात्मा के द्वार तक जा सकोगे। नाद जब तुम्हारे भीतर बजेगा, जब तुम नाद में लीन हो जाओगे, उसी क्षण द्वार के सामने अपने को पाओगे। कितने राग, कितनी रागिनियां, कितने नाद, कितने गायक! यही तेरा द्वार है। सुबह से सांझ तक, सांझ से सुबह तक असंख्य राग बज रहे हैं।

तुम जीवन में उन रागों को पहचानना शुरू करो। मनुष्य का सारा संगीत अस्तित्व के रागों से पैदा हुआ है। मनुष्य के सारे वाद्य अस्तित्व की नकल से पैदा हुए हैं। पक्षी गाते हैं, झरने गाते हैं, हवाएं गाती हैं, आकाश में बादल गरजते हैं, इन्हीं सबसे नाद पैदा हुए मनुष्य के। सारी राग-रागिनियां पैदा हुईं। इनसे ही सारे वाद्य निर्मित हुए।

अस्तित्व में राग को पहचानने की कोशिश करो। सुबह उठ कर पहला ध्यान चारों तरफ हो रही ध्वनियों पर डालना। और अगर तुम्हें ध्वनियां सुनायी पड़ने लगें, तो तुम पाओगे कि वे दिनभर तुम्हें सुनायी पड़ती रहेंगी। क्योंकि वे सदा जारी हैं। सिर्फ तुम बहरे हो।

रात के सन्नाटे में बैठ जाना और सुनना सन्नाटे को। सन्नाटे का नाद बहुत निकट है ओंकार के। इसलिए जब भी तुम्हारे भीतर ओंकार बजेगा, तो पहले तो तुम्हें सन्नाटे का नाद ही सुनायी पड़ेगा। सन्नाटे की झांई; जैसे झींगुर बोलते हों और रात बिल्कुल चुप हो, वैसी झांई तुम्हें पूरे वक्त सुनायी पड़ने लगेगी--चौबीस घंटे! बाजार में, दुकान पर, दफ्तर में तुम पाओगे कि वह झांई बजती ही जाती है। क्योंकि वह बज ही रही है। बाजार के शोरगुल में दब जाती है, बजना बंद

नहीं होता। उपद्रव में खो जाती है, समाप्त नहीं होती। और तुम्हें पकड़ में आ जाए, तो तुम उसे कभी भी पहचान लोगे। और जैसे-जैसे तुम्हारी पकड़ साफ होती जाएगी और पहचान निखरेगी, वैसे-वैसे तुम पाओगे चौबीस घंटे, अहर्निश उसके द्वार पर राग-रागिनियों का मेला लगा हुआ है।

ध्यान रखो, जिन्होंने भी उसे जाना है, उन्होंने उसे सच्चिदानंद कहा है। जब भी कोई आनंद से भर जाता है, तो गीत से भर जाता है। गीत और आनंद में बड़ा नैकट्य है। बड़ी समीपता है। दुख में कोई नहीं गाता, सिवाय फिल्मों को छोड़ कर! दुख में आदमी रोता है, गाता नहीं है। दुख में आंसू बहते हैं, गीत नहीं। जब कोई आह्लादित होता है, आनंदित होता है, तब गाता है। और तब अगर आंसू भी बहें, तो भी उन आंसुओं में गीत होता है। आनंद के क्षण में तुम जो भी करोगे उसमें गीत होगा; उसमें गीत की भनक होगी। तुम्हारे उठने-बैठने में गीत होगा। तुम्हारे चलने-फिरने में गीत होगा। तुम्हारे श्वास लेने और छोड़ने में गीत होगा। तुम्हारे हृदय की धड़कन में नाद होगा। जैसे-जैसे तुम आनंद के करीब पहुंचते हो, वैसे-वैसे गीत के करीब पहुंचते हो। निश्चित ही गीत उसका द्वार है। क्योंकि भीतर परमानंद है।

ऐसी भी घड़ी आती है जब गीत भी बंद हो जाता है। क्योंकि गीत द्वार है। जब तुम द्वार के भीतर प्रविष्ट हो जाते हो, तो गीत भी खो जाता है। क्योंकि ऐसी घड़ी भी आती है जब गीत भी बाधा मालूम पड़ता है। तब उसका ही गीत चलता है, तुम्हारा गीत बिल्कुल खो जाता है। तब तुममें अनंत ध्वनियां गूंजती हैं। तुम्हारी अपनी कोई ध्वनि नहीं होती। तुम सूने घर हो जाते हो।

हमने मंदिर इस ढंग से बनाए थे कि उनमें आवाज गूंजे। आवाज गूंजने को ध्यान में रखा था। मंदिर का पूरा स्थापत्य, उसका पूरा आर्किटेक्चर आवाज को गुंजाने को ध्यान में रख कर बनाया गया था। वह इस खबर को देने के लिए कि एक तो मंदिर खाली है। उसमें हम कुछ रखते नहीं। वह खाली होना ही चाहिए। क्योंकि वह हमारी आखिरी खाली अवस्था का प्रतीक है। जहां हम बिल्कुल खाली हो जाएंगे और जहां नाद गूंजेगा। मंदिर के द्वार पर ही हमने घंटा लटका रखा था। जो भी आए, पहले घंटे को बजाए, क्योंकि द्वार पर नाद है।

ये सब प्रतीक हैं उस परमद्वार के। बिना घंटा बजाए कोई मंदिर में प्रवेश न करे! क्योंकि नाद में ही प्रवेश है। और घंटे की यह खूबी है कि तुम बजा दो, तो भी वह गूंजता रहता है। और जब तुम प्रवेश करते हो मंदिर के द्वार में तब घंटे का नाद गूंजता रहता है। उस नाद में ही मंदिर के द्वार में प्रवेश करने की व्यवस्था है। बिना बजाए कोई प्रवेश न करे! क्योंकि वैसे ही नाद में, तुम परमात्मा में भी प्रवेश करोगे। परमात्मा का घर है यह मंदिर, उसका प्रतीक घर है। वहां तुम्हें घंटा न बजाना पड़ेगा, वहां नाद बज ही रहा है। लेकिन हमने प्रतीक में भी व्यवस्था की थी। फिर जब तुम वापस मंदिर से लौटो द्वार पर, फिर घंटा बजाना। गूंजते नाद में ही वापस लौटना। पूजा है, प्रार्थना है, वह घंट-नाद से ही शुरू होती है।

नानक कहते हैं, अनेक नाद बज रहे हैं। कितने असंख्य बजाने वाले हैं। और नानक ऐसे नहीं कह रहे हैं, जैसे कहीं दूर से वर्णन कर रहे हों; जैसे द्वार पर खड़े हैं। इसलिए जो शब्द उन्होंने उपयोग किए हैं, वे सीधे हैं।

वह द्वार कहां? वह घर कैसा? जहां बैठ कर तू सबकी सम्हाल कर रहा है। अनेक नाद बज रहे हैं, कितने असंख्य बजाने वाले हैं।

जैसे यह सब नानक की आंख के सामने है। असंख्य गायक, अनंत राग-रागिनियां, पवन, पानी, अग्नि तेरा यश गाते हैं। धर्मराज भी तेरे द्वार पर बैठ कर गाते हैं।

थोड़ा समझें। क्योंकि धर्मराज का तो काम ही धर्म और अधर्म का भेद करना है। धर्मराज का अर्थ है, नीति की पराकाष्ठा। वे नीति के देवता हैं। क्या शुभ है, क्या अशुभ है, उसकी ही बारीक खोज करना; शुभ-अशुभ का निर्णय ही धर्मराज की व्यवस्था है। नानक कहते हैं, उनको भी मैं देख रहा हूं कि वे भी तेरे द्वार पर बैठे गीत गा रहे हैं।

क्योंकि धर्मराज से ज्यादा गंभीर आदमी तो खोजा नहीं जा सकता। धर्मराज का अर्थ ही यह है, बहुत गंभीर होगा। इंच-इंच सोचेगा कि क्या ठीक, क्या गलत; क्या करूं, क्या न करूं; क्या करने योग्य, क्या न करने योग्य! उनको भी देखता हूं कि वे भी मस्ती में गीत गा रहे हैं। तेरे द्वार पर धर्मराज तक गीत गा रहे हैं। चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं, जिनका कि सारा काम ही पाप-पुण्य लिखना है। पाप-पुण्य का जो हिसाब-किताब रखता हो, वह क्या गीत गाएगा!

अदालत में देखते हैं, मजिस्ट्रेट कैसा बैठा होता है! ये छोटे-मोटे चित्रगुप्त हैं! अकड़ कर बैठा रहता है। कपड़े भी उसके हम इस तरह से बनाते हैं--काले--कि गंभीरता की, मौत की खबर दें। पुरानी व्यवस्था तो यही थी कि मजिस्ट्रेट अदालत में जब बैठे, तो वह सफेद बालों का विग पहने। काले कपड़े, सफेद बाल, वह भी विग--सब झूठा। और चेहरे पर गंभीरता; वह हंसे न। अदालत में हंसना तो अदालत की तौहीन है। सजा दी जा सकती है, अगर कोई अदालत में हंसे। वहां गान कैसा! गीत कैसा! और चित्रगुप्त यानी आखिरी अदालत।

नानक कहते हैं कि देखता हूं कि चित्रगुप्त भी गीत गा रहे हैं! जैसे सारी गंभीरता मिट गयी तेरे द्वार पर। तेरा द्वार उत्सव का द्वार है।

जीवनसंगी -- उपहार स्वरूप या अधिकार स्वरूप?

यह अत्यंत सवाल महत्वपूर्ण है।

व्यक्ति या वस्तु या कोई स्थिति जो हमें लंबे समय के लिए प्राप्त है उपलब्ध है। हम उसके प्रति अंधे हो जाते हैं, मानो वह है ही नहीं। सामान्यतः हमारी नजर उन चीजों पर पड़ती है, जो हमें उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि उन्हें प्राप्त करने की कोशीश करनी है। वह हमारे अहंकार के लिए चुनौती हैं, चौलेंज। जो हमें उपलब्ध है, हमेशा। उस पर हमारी दृष्टि ही जानी बंद हो जाती है। टेकन फॉर ग्रांटेड जिसको कहते ना। उसको हमने अपना अधिकार ही मान लिया। हां! अगर वह खो जाए, तब जाकर हमें फिर पता चलता है। फिर याद आती है, कमी अखरती है किसी व्यक्ति की। लेकिन जब तक वह मौजूद है तब तक, हम उसे बिल्कुल ही विस्मृत करके जीते हैं, जैसे कि वह है ही नहीं और यह एक बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है। हमारे आपसी संबंधों को खराब करने का कारण है।

सामने जो मौजूद है उसकी कोई इज्जत नहीं, उसकी तरफ ध्यान तक नहीं दे रहे। जो नहीं हैं मौजूद, उन पर हमारा ख्याल है। मैं कई बार देखता हूं लोगों को मोबाइल से ऐसे चिपके हुए हैं। लगे हुए व्हाट्सएप से, व्हाट्सएप खत्म हुआ फेसबुक शुरू। जो लोग मौजूद नहीं है, उनके साथ कम्युनिकेशन हो रहा है और घर परिवार के लोग जो यहां बैठे हैं सामने। उनसे आपस में बात नहीं हो रही। कई बार तो ऐसा लगता है इन सज्जन से बात करना हो तो उनको फोन करके बात करो। है सामने बैठे। मगर सीधे बात, उनको मौका नहीं मिलता बात करने का।

मैंने सुना है एक बूढ़े पति पत्नी रात को डिनर ले रहे थे। उस वृद्ध स्त्री ने कहा कि काश! हमारा बेटा भी होता, वो भी डिनर लेता, कितना अच्छा होता। बाप ने कहा रुको, मैं अभी उसको फेसबुक पर लिखता हूं। उसने फेसबुक निकालकर उस अपडेट करने लगा। उसने लिखा कि तुम्हारी माँ कह रही है कि कितना ही अच्छा होता। करीब छः महीने हो गए, जब हम मिले थे। एक बार साथ डिनर करेंगे, तो कितना अच्छा होगा।

उसने मैसेज लिखा और धम धम धम की आवाज सुनाई दी। सीढ़ियों पर से उतरता हुआ लड़का आया बोला कि आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हो? लो आ गया, करो डिनर साथ।

एक ही घर में रहने वाले लोग, अलग अलग मंजिल पर, अलग अलग कमरों में, अपने अपने फेसबुक और व्हाट्सएप में कैद हैं। आपस में कम्युनिकेशन नहीं। छः महीने हो गए, बेटे को नहीं देखा। अगर और कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी बढ़ती जाएगी जैसा कि उम्मीद है। हम एक बहुत ही खतरनाक स्थिति में पहुंचने वाले हैं। जो आमने सामने चारों तरफ मौजूद हैं। जो वाकई में हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण हैं। जिनसे हमारा जीवन संभला हुआ है। उनके प्रति हम अंधे होते जा रहे हैं। उनसे हमारा कोई कम्युनिकेशन नहीं हो रहा और दूर काल्पनिक लोग अधिकांश फेसबुक के तो आईडी भी झूठे रहते हैं, फोटोग्राफ भी झूठा रहता है। उससे बडी लम्बी चौडी गपशप चल रही है चौटिंग चल रही है। क्यों? जो सामने मौजूद है उसको तो हमने मान लिया। ये तो पिताजी हैं, यह माताजी हैं, ये तो है ही, ये तो बदल नहीं सकते। अब कोई दूसरी माताजी पिताजी तो हो नहीं सकते। कम से कम भारत में तो नहीं हो सकते। यह तो हमेशा ही मौजूद हैं। इन पर क्या ध्यान देना।

मुझे याद आता है सद्गुरु ओशो ने एक जगह आस्तिक और नास्तिक की बड़ी सुंदर परिभाषा की है। आस्तिक वर्ल्ड बना है, जिससे अस्तित्व बना है- अस्ति अर्थात जो है दैट इज एग्जिस्टस और नास्तिक का मतलब होता है जो नहीं है- दैट इज नॉट एग्जिस्टस। ओशो कहते हैं आस्तिक का ईश्वर के मानने, ना मानने, मंदिर जाने, न जाने से कोई संबंध नहीं है। आस्तिक का अर्थ है जिसकी दृष्टि अस्तित्व पर है। जो एग्जिस्टेन्शियल जो मौजूद है, जो है अभी, यही। उस

पर जिसकी नजर है वह आस्तिक है और नास्तिक का मतलब जो नहीं है- नॉन एग्जिस्टेन्शियल, वो उनमें जी रहा है। या तो अतीत की यादें जोकि अब नहीं हैं या भविष्य के सपने जो अभी हुए ही नहीं। वो नास्तिक है।

अद्भुत परिभाषा है, आस्तिक नास्तिक की। जरा ख्याल में लेंगे। हम सब यहाँ आध्यात्मिक साधक मौजूद हैं। अपने घर में, परिवार में जो लोग हैं, कृपया इनकी उपस्थिति के प्रति सावधान और जागरूक बने। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यही लोग हैं, हमारे जीवन में। जो बीत चुके अतीत की स्मृतियों में है। कृपया उन्हें जाने भी दें। जो आपकी कल्पनाओं में बसे हैं, अभी है नहीं, वहां से ध्यान हटाएं। ध्यान कहां लगाएं? जो है उस पर और तब आप पाएंगे, आप दूसरे व्यक्ति को वास्तव में सम्मान देना शुरू किया। उसकी उपस्थिति को आपने एहसास किया और जब एक तरफ से ऐसा होगा तो निश्चित दूसरी तरफ से भी होगा। पूरे परिवार का माहौल बदल जाएगा। हमारा कोई भी अधिकार किसी पर नहीं बनता। सब परमात्मा का दिया उपहार है। यह माता पिता, भाई बहन, पति पत्नी, कि बच्चे, कि मित्र सब उपहार स्वरूप हैं। कब कौन दिन, कौन छीन लिया जाएगा, कोई भी नहीं जानता? डोंट टेक इट फार ग्रांटेड!

हर दिन को ऐसे जियो, जैसे यह आखिरी दिन है। सुबह जब उठो, उठने के पहले, आंख खोलने के पहले एक बार जरा ख्याल करना, आज मैं ऐसे जीऊंगा, जैसे मैं आज ही जन्मा हूं। यह मेरे जीवन का प्रथम दिन है और शायद यह अंतिम दिन भी हो। दिन में कई बार इस बात को स्मरण करना। तब तुम पाओगे तुम कितने शांत, कितने प्रफुल्लित, कितने प्रेमपूर्ण और आनंदित हो गए। वह जो क्रोध और घृणा भरी हैं मन में, वह भरी है अतीत से। अगर तुमने तय कर लिया कि यह मेरा नया जन्म है आज का। यह नया दिन मान लो, पहला ही दिन है मेरा। तब अतीत बूझ गया कि तुमने यह कहा था, फलाने में तुमने यह कहा था। झगडे होते किस बात पे?

हम नेपाल में थे, वहां स्वामी भारती एक दिन बताए कि उनके माता पिता जो कि छियानवे और बानवे साल के थे। आज खूब झगड़ा हुआ उनका। मैंने पूछा क्या हुआ झगड़े में? वो बोले हर आठ दस दिन में होता है। एक ही मुद्दा है अभी तो, हॉट! गर्मागर्म। ओम भारती ने बताया कि मां कहती हैं कि जब शादी हुई थी, तब वह बारह साल की थी और पिताजी सोलह साल के थे। जब शादी हुई थी उसके दो साल बाद काठमांडू घूमने गए थे, तो जब बाजार में जा रहे तो एक लड़की तुम्हें देखकर मुस्कुराई क्यों थी? और पिताजी कहते मैं उस लड़की को जानता ही नहीं। तुम किस लड़की की बात कर रही हो। मुझे नहीं पता? वो कहती ऐसे कैसे नहीं? वह मुस्कुराई क्यों है? जरूर तुम जानते होगे? बता नहीं रहे और इसपर हर आठ दस दिन में जंग छिड जाता है। छियानवे साल के हो चुके हैं वो।

कब की याद? अगर हम अतीत को पोंछ दें। तब हम पाएंगे आज जो वर्तमान में व्यक्ति मौजूद है, हम इसके प्रति प्रेमपूर्ण और आदरपूर्ण हो पा रहे हैं। अतीत की स्मृतियाँ हमारे बीच में दीवार का काम करती हैं। हम कट ऑफ हो जाते हैं दूसरे से। बीच में इतनी मोटी दीवार खड़ी है। कटु स्मृतियाँ। उसके आर पार फिर हाथ नहीं बढ़ सकता दोस्ती का।

रोज सुबह उठकर यही सोचें कि आज मुझे जो भी मिला, मिलेगा, मिला है वह सब उपहारस्वरूप है और सच में कौन जानता है किस क्षण क्या हो जाता है? हो सकता है सब रहे और मैं ही न रहूँ आज। इस ढंग से जीना शायद यह पहला दिन है और शायद यह आखिरी दिन है। हर रात को सोने के पहले पाँच मिनट जरा स्मरण करना। कहीं कोई भूल चूक तो नहीं हुई आज। क्योंकि हो सकता है आज की रात आखिरी रात हो। आपको पता है सात अरब की पॉपुलेशन में ढाई लाख आदमी रोज मर जाते हैं। एक दिन पहले वो भी हमारे जैसे ही थे। ढाई लाख आदमी रोज मर जाते हैं। मेरा नंबर किस दिन होगा? कौन जानता है। कोई न कोई रात तो होगी, जिस आखिरी रात होगी उस सुबह नहीं उठूंगा। आज की रात इतने रिलैक्स होकर सोओ, बिल्कुल शिथिल होकर मानो, आखिरी रात है। कुछ पेंडिंग, कुछ सिर पर बोझ लेकर न जाएं। सुबह उठे फिर धन्यवाद स्वरूप। एक दिन और मिली है, आज फिर आंख खुल गई। प्रभु की कृपा है, धन्यवाद देना। उस ढंग से जीवन को जीना। तो सिर्फ पति पत्नी के मामले में ही यह बात नहीं लागू होती।

आपके पूरे जीवन के रवैया पर लागू होती है। अगर हर छोटी छोटी चीज आप इस ढंग से लोगे। तब निश्चित रुप से वह जो दाम्पत्य का संबंध है, वह भी बहुत मधुर और प्रीतिकर हो जाएगा।

प्रेम-भावना का परिष्कार कैसे हो?

प्रेम की भावनाएं कई प्रकार की होती हैं, और यह विभिन्न आध्यात्मिक, भावात्मक, और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर भिन्न हो सकती हैं। व्यक्ति के जीवन में अलग-अलग संदर्भों में प्रकट हो सकती हैं। प्रेम के विभिन्न आयामों को समझते हुए, हम अपने जीवन में भावुकता, सहानुभूति, और समर्पण को बढ़ाने का प्रयास कर सकते हैं।

नीचे कुछ मुख्य प्रेम की भावनाओं का वर्णन किया गया है, जिसे जानते हुए क्रमशः अपने हृदय का शुद्धिकरण और भावनाओं का परिष्कार किया जा सकता है:

1. रोमांटिक प्रेमः यह प्रेम स्त्री-पुरुष, प्रेमी-प्रेमिका, या पारिवारिक संबंधों में जीवन साथी के प्रति आकर्षण और संवेदनशीलता की भावना होती है। यह प्रेम रोमांटिकता, आकर्षण, आत्मीयता और भावुकता के साथ जुड़ा होता है।

2. छोटों और बच्चों से प्रेमः ममता, वात्सल्य, स्नेह, सहयोग वाला यह प्रेम माता-पिता और बच्चों के बीच निरंतर और आदर्शपूर्ण संबंध की भावना होती है। यह प्रेम संरक्षण, समर्पण, देखभाल, और आपसी संबंधों में आदर्शता के साथ जुड़ा होता है।

3. बराबर वालों के संग मैत्रीः यह प्रेम मित्रों और सामान्यतः सभी लोगों के प्रति दोस्ताना भावना होती है। यह प्रेम स्नेह, सहयोग, समर्थन, और सदैव उदार भाव के साथ संपन्न होता है।

4. बड़ों के प्रति आदर व श्रद्धाः मातृ-पितृ और गुरुजनों के प्रति सम्मान की भावना प्रेम का उत्कृष्ट रूप है।

5. भावपूर्ण प्रेमः यह एक समर्पित, स्वीकार्य और उदार प्रेम की भावना है। यह प्रेम सभी जीवों के प्रति विकसित होता है। यह भावपूर्ण प्रेम दया, सेवा, उदारता, अहिंसा और समर्पण के साथ संपन्न होता है।

6. दिव्य प्रेमः यह अकारण प्रेम ईश्वर या भगवत्ता के प्रति आनंदपूर्ण भावना होती है। यह प्रेम भक्ति, समर्पण, सेवा, और दिव्यता के प्रति अभिमान रहित होता है। समष्टि के प्रति प्रीति का नाम भक्ति है।

ऐसी कौन से गुण हम सीखें कि हमारे पारिवारिक जीवन में सुख-शांति हो सके?

सुख-शांति भीतर हो तो बाहर भी प्रतिबिंबित होती है। दूसरों को हम वही दे सकते हैं, जो हमारे पास है। संबंधों में माधुर्य एवं सौंदर्य तभी संभव है, जब वह सर्वप्रथम हमारे अंदर हो। इसलिए असली सवाल खुद का है। क्या हमारे भीतर प्रेम की सदभावना है? क्या हम दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं? क्या हम होशपूर्वक जीते हैं? स्वयं को प्रेम करते हैं? अपनी जिंदगी का सम्मान करते हैं? जो खुद को ही नहीं प्रेम करता, वह दूसरों को कैसे करेगा।

प्रत्येक ध्यानी साधक के लिए अनिवार्य है--परिवारजनों के साथ प्रेम व स्वतंत्रता के संग आनंद पूर्वक जीने की कला। इसे सीखे बिना अध्यात्म में डूबना असंभव है। यदि बाहरी जगत में हम क्रोध, द्वेष, अहंकार, ईर्ष्या, मालकियत आदि दुर्भावनाओं में उलझे हैं तो अंतर्यात्रा नहीं हो सकती। प्रेम व स्वतंत्रता का समन्वय ऐसे है जैसे मंदिर के स्तंभ यदि बहुत निकट आ जाएं तो गुंबज गिर जाएगी। और यदि खंबे बहुत दूर चले जाएं तो भी मंदिर ध्वस्त हो जाएगा। प्रेम है करीब आना और स्वतंत्रता है दूर जाना। दोनों में समन्वय का अर्थ है न बहुत पास न बहुत दूर। सम्यक दूरी पर खंबे रहें तो मंदिर संभला रहता है। यही है सम्यक जीवन की कला, जो ओशो हमें सिखाते हैं।

क्या प्रेम के लिए विवाह है या विवाह के लिए प्रेम है?

पहले प्रेम, फिर विवाह ऐसा है जैसे बैलगाड़ी में आगे बैल, पीछे गाड़ी।

पहले विवाह, फिर प्रेम की अपेक्षा ऐसी है जैसे गाड़ी के पीछे बैल जोत दिए जाएं।

प्रथम उदाहरण में गाड़ी के चलने की काफी-कुछ प्रतिशत संभावना है।

दूसरे उदाहरण में गाड़ी के चलने की शून्य प्रतिशत संभावना है।

इस संबंध में ओशो के विचार जानने के लिए निम्नांकित लिंक से

बीवी से बनाए रखने के क्या फायदे हैं?

व्यक्तिगत फायदा हो सकता है किंतु राष्ट्रीय स्तर पर बहुत नुकसान होगा इसलिए विनती है कि निजी लाभ की नहीं, बल्कि देश हित की बात सोचिए।

प्रत्येक नकारात्मक घटना का एक पॉजिटिव पहलू भी होता है।

उदाहरण देखिए~

95% भारतीय पतियों और पत्नियों की आपस में बिलकुल नहीं बनती।

ऐसी विकट स्थिति में भी जनसंख्या के मामले में भारत नंबर एक हो गया।

सोचो, यदि बनती तो क्या होता..?

अतः निष्कर्ष है कि जो है, सो अच्छा ही है। भगवान करे ऐसा ही रहे।

ये दुष्ट प्राणी सदैव लड़ते झगड़ते रहें। दाम्पत्य दुख में ही है देशहित और राष्ट्रीय सुख

दायां मस्तिष्क और बायां मस्तिष्क क्या है, यह बच्चों के सीखने और याद रखने में कैसे काम करता है?

मानव मस्तिष्क दो भागों में विभाजित होता है: "दायां मस्तिष्क" और "बायां मस्तिष्क" दोनों ही मस्तिष्क के दो हिस्सों को सूचित करने के लिए उपयोग होने वाले शब्द हैं, जिन्हें अक्सर अंग्रेजी में "Right Hemisphere" (दायां मस्तिष्क) और "Left Hemisphere" (बायां मस्तिष्क) के रूप में समझा जाता है।

दायां मस्तिष्क बयां मस्तिष्क के मुकाबले अधिक शक्तिशाली नहीं होता है। मानव मस्तिष्क का संघटित कामकाज बयां और दायां मस्तिष्कों के सहयोग से होता है, और यह दोनों हिस्सों के साथ काम करके विभिन्न कार्यों को संचालित करता है।

दायां मस्तिष्क और बायां मस्तिष्क दोनों ही अपने खास क्षेत्रों में महत्वपूर्ण होते हैं और विभिन्न कौशलों के लिए जिम्मेदार होते हैं:

दायां मस्तिष्क (Right Hemisphere): शरीर के बायां हाथ के साथ संबंधित होता है। इसका संबंध क्रियाओं के साथ होता है जो साहसीपन, कला, स्थानीय समझ, छविता और सवाल-जवाब के साथ जुड़े होते हैं। यह हमारी चित्रकला, म्यूजिक, रूचिकरता और सामाजिक संवाद कौशल के लिए महत्वपूर्ण होता है। बायां मस्तिष्क (Left Hemisphere): शरीर के दायां हाथ के साथ संबंधित होता है। यह भाषा, गणित, तार्किक सोच, लेखन, और तकनीकी कौशल के साथ जुड़ा होता है।

इन दो हिस्सों के बीच सहयोग है जिससे हमारा संज्ञान, सोच, और व्यवहार संवादी और संवादी दोनों होते हैं।

दायां मस्तिष्क का यह भाग कला, नृत्य, संगीत, और अन्य रूचिकरता कार्यों में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, दायां मस्तिष्क का काम करने का तरीका निम्नलिखित है: छविता और कला: दायां मस्तिष्क छविता का

काम करता है, जिससे हम कला, रूचिकरता, और रंगों को समझते हैं। यह हमें चीजों के रूप, रंग, और आकृति को बेहतर तरीके से समझने में मदद करता है. स्थानीय समझ: दायां मस्तिष्क स्थानीय समझ को बढ़ावा देता है, जिससे हम वस्तुओं की स्थानिक समझ को अच्छे से समझ सकते हैं, जैसे कि एक व्यक्ति की स्थान, दिशा, और दूरी को समझना. साहसीपन: यह हमारी साहसीपन और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता को संवादी तरीके से प्रोत्साहित करता है। अनुभवों का अभिव्यक्ति: दायां मस्तिष्क हमारे अनुभवों और भावनाओं को अधिक अभिव्यक्त करने में मदद करता है, जैसे कि कला, संगीत, और उपन्यास लेखन.

लेफ्ट साइड में चेतन मन है। राइट साइड में अवचेतन मन है। सामान्य भाषा में हम चेतन मन को दिमाग और अवचेतन को दिल कहते हैं। दोनों मस्तिष्क हिस्से एक साथ काम करके हमें पूरी तरह से दैनिक जीवन में विभिन्न कौशलों का सहयोग करते हैं।

जिसे हम दिल समझते रहे हैं, क्या वह दरअसल हमारा दाहिना मस्तिष्क यानी राइट ब्रेन है?

सबसे पहले तो यह समझ लें कि एनाटॉमी की मेडिकल भाषा में जिसे दिमाग या ब्रेन कहते हैं, उसका अर्थ अलग है। वह खोपड़ी के भीतर स्थित एक भौतिक अंग का नाम है। फिलासफी की भाषा में जब हम कहते हैं मस्तिष्क, तो हमारा मतलब होता है सोचने-विचारने का केंद्र, और जब कहते हैं दिल, तो मतलब होता है भावना का केन्द्र। इससे कन्फ्यूजन पैदा हो जाता है। एक ही शब्द दो जगह अलग अलग अर्थों में इस्तेमाल आता है।

जैसे काव्यात्मक उपमाएं, प्रतीक होती हैं। कोई प्रेमी कह रहा है अपनी प्रेमिका से कि तुमने मेरा दिल चुरा लिया। यहां पर अर्थ एनाटॉमी वाला हार्ट नहीं है जो पोस्टमार्टम करके उसके शरीर से निकाल लिया। यह भावनात्मक, सांकेतिक उपमा है। लेकिन इससे भ्रांति पैदा हो सकती है। गद्य और पद्य में अर्थ भिन्न हो जाते हैं। काव्य और विज्ञान में शब्द के अर्थ, संदर्भ के संग बदल जाते हैं।

जब हम प्राचीन शास्त्रों में हृदय शब्द पढ़ते हैं, जैसे गीता में भगवान कृष्ण का वचन है कि मैं हर मनुष्य के हृदय में विराजमान परमात्मा हूं। इसका मतलब एनाटॉमी का हार्ट नहीं है, जो सीने के बायीं ओर स्थित है और रक्त परिवहन कराता रहता है। इस ब्लड-पंपिंग स्टेशन की बात नहीं हो रही है। याद रखिएगा, अध्यात्म में जहां हृदय शब्द आ रहा है, वहां ऋषि का इस हार्ट से तात्पर्य नहीं है।

एक मित्र ने कल ही सवाल पूछा था कि ओशो के एक प्रवचन में पढ़ा है कि मां के गर्भ में बच्चे का हृदय कार्य नहीं करता तो फिर अल्ट्रासाउंड जांच करने पर हृदय की धड़कन कैसे सुनाई पड़ती है? मैंने उनसे कहा कि जिसको हम खून का पंपिंग स्टेशन कह रहे हैं, वह तो गर्भस्थ शिशु में भी काम करता है। अल्ट्रासाउंड में उसी की आवाज सुनाई पड़ती है। लेकिन इस संदर्भ में जब ओशो 'हृदय' कह रहे हैं, उनका भावार्थ अलग है। इस बात को समझें। जब वे कह रहे हैं 'हृदय' उनका मतलब है फीलिंग महसूस करने वाला सेंटर, भावना का केन्द्र, वह काम नहीं कर रहा। अभी बच्चा अकेला है। भावना किसके साथ जुड़ेगी? भाव का जगत तो बाद में विकसित होगा। जब ओशो कहते हैं जन्म के पश्चात बच्चे का हृदय विकसित होता है तो किस हृदय की बात कर रहे हैं? एनाटॉमी वाले हार्ट की नही, फीलिंग वाले हार्ट की।

जब वे कहते हैं कि पढ़ाई-लिखाई से मस्तिष्क विकसित होता है। तब, ब्रेन तो बहुत पहले बन चुका, उसकी बात नहीं कर रहे हैं। शिक्षा द्वारा सोच-विचार की क्षमता, स्मृति, जानकारी, तर्क शक्ति के विकास की बात कर रहे हैं। अतः सामान्य भाषा में ब्रेन के बाएं हिस्से को हम विचारों का केंद्र अर्थात 'मन' कहते हैं और दाहिने हिस्से को भावनाओं का केंद्र अर्थात 'हृदय' कहते हैं। उर्दू भाषा में दिमाग और दिल इन्हीं को कहते हैं। इनके थोड़े अलग-अलग फंक्शन हैं। 'मन' के कार्य हैं- शब्दों में सोच विचार की क्षमता, थिंकिंग, चिंतन-मनन, अंक, गणित, हिसाब-किताब, विज्ञान,

भाषा, व्याकरण, तर्क, अनुक्रमण यानी सिक्वेंसिंग, लीनियर थिंकिंग यानी रैखिक सोच, तथ्यों का विश्लेषण यानी एनालिसिस। ये सारी इंटेलेक्चुअल क्षमताएं मुख्यतः बाएं तरफ से होती हैं। मस्तिष्क, मन, चित्त, दिमाग, अकल, बुद्धि आदि शब्दों का प्रयोग इसी बाएं हिस्से की तरफ इशारा करने के लिए होता है।

इससे ठीक विपरीत 'हृदय' के कार्य हैं- फीलिंग, सेंसटिविटी, संवेदनशीलता, भाव, इमोशन, अनुभव, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, करुणा, ममता, दया, कल्पना, सपना, धारणा, अंतः प्रेरणा या अंतर्ज्ञान यानी इंट्यूशन, चित्रात्मक ढंग से, दृश्यात्मक ढंग से सोचना। लेफ्ट ब्रेन में शब्दों में सोचते हैं, राइट ब्रेन में चित्रों में सोचते हैं। राइट ब्रेन, रचनात्मक, सृजनात्मक, क्रिएटिविटी का केंद्र है। राइट ब्रेन में टोटल, समग्र सोच होती है तो लेफ्ट ब्रेन में लीनियर थिंकिंग होती है। यहां पर बिना शब्द के संकेत समझे जाते हैं। बॉडी लैंग्वेज पढ़ी जाती है। दिवास्वप्न यानी डे-ड्रीमिंग एवं संगीत की लय, रिदम को पकड़ना भी राइट ब्रेन का फंक्शन है। अगर एक गीत के अर्थ को समझना है तो लैफ्ट ब्रेन काम करेगा। शब्दों का अर्थ वहां है। लेकिन गीत की लय, उसकी रिदम, टेम्पो की समझ राइट ब्रेन में है।

ऐसा मत समझना कि कोई व्यक्ति पूरी तरह लेफ्ट ब्रेन ओरिएंटेड या राइट ब्रेन ओरिएंटेड होता है। दोनों का मिश्रण हम सबके भीतर होता है। परसेंटेज अलग हो सकती है। एक हिस्सा ज्यादा हावी होता है। जब हम कहते हैं कोई व्यक्ति बुद्धिजीवी है, इंटेलेक्चुअल है, लेफ्ट ब्रेन वाला है, इसका मतलब यह नहीं कि उसके अंदर राइट ब्रेन नहीं है। राइट ब्रेन है, लेकिन डोमिनेंट लेफ्ट ब्रेन है। इसके विपरीत कोई व्यक्ति ज्यादा भावुक है, इमोशनल है, उसके भीतर राइट ब्रेन ज्यादा फंक्शन करता है। जब हम कहते हैं कोई व्यक्ति दिल से जीता है, हृदय से जीता है अर्थात वह भावनाओं की ज्यादा सुनता है, विचारों की कम सुनता है। तर्कसंगत विश्लेषण, लॉजिकल एनालिसिस नहीं करता। वह सिंथेसिस करता है, वह चीजों को समग्रता में अनुभव ज्यादा कर पाता है।

फिलासफी और एनाटॉमी के बाद, पिछले सवा सौ साल में मनोविज्ञान विकसित हुआ है। उसमें भी कई शब्दों के भावार्थ बदल गए हैं। जब मनोवैज्ञानिक कहता है मन, उसका मतलब ब्रेन से नहीं होता। मनोवैज्ञानिक भी पुराने शब्द तो वही इस्तेमाल करेगा ना, नए शब्द कहां से लाएगा? 20वीं सदी के आरंभ में सिगमंड फ्रायड ने मन के दो हिस्से किए थे- चेतन मन और अचेतन मन, कॉन्शस माइंड और अनकॉन्शस माइंड। अनकॉन्शस माइंड धीरे-धीरे 20वीं सदी के समापन के दौरान, सबकॉन्शस माइंड बन गया। अब अचेतन को अवचेतन पुकारते हैं। ज्यादा सटीक, चेतन के नीचे! अगर उसके भावार्थ को पकड़ेंगे तो फिर कन्फ्यूजन नहीं होगा। तब हमको स्पष्ट समझ में आएगा कि राइट ब्रेन के जो फंक्शन हैं, गुण हैं, क्वालिटीज हैं, वे वही हैं, जिसे हम हृदय के गुण कहते रहे हैं।

इस संबंध में आपने पूछा है ओशो ने कभी कुछ कहा है? अवश्य। उन्होंने हृदय के गुण कई बार समझाए हैं। कुछ प्रवचनों की सूची पढ़ता हूं हृदय के बारे में-

गीता दर्शन, अध्याय 4, अठारहवां प्रवचन श्लोकः42
गीता दर्शन, अध्याय 8 पांचवां प्रवचन, श्लोकः 12-13
गीता दर्शन, अध्याय 10 सातवां प्रवचन, श्लोकः 19-20
गीता दर्शन, अध्याय 13, छटवां प्रवचन, श्लोकः 6-7
गीता दर्शन, अध्याय 15, चौथा प्रवचन, श्लोकः 10-11
गीता दर्शन, अध्याय 18, सोलहवां प्रवचन, श्लोकः 61
भजगोविन्दम मूढ़मते-9
कठोपनिषद-16, श्लोकः 14-15
विज्ञान भैरव तंत्र 12 सिरविहीन होने की कल्पना
विज्ञान भैरव तंत्र 24 मृतवत होने की भावना

निवेदन है कि इनको आप पढ़िए, विशेषकर गीता दर्शन एवं कठोपनिषद् में जहां हृदय का वर्णन आया है। उससे स्पष्ट होगा कि जब ओशो हृदय के गुण समझाते हैं तो वे राइट ब्रेन के गुण हैं। वे एनाटॉमी वाले हार्ट के, खून पंपिंग स्टेशन के गुण नहीं हैं। हार्ट का ट्रांसप्लांटेशन हो जाए अथवा कृत्रिम हृदय भी लग जाए, लेकिन वे गुण नहीं बदलेंगे। वे गुण ब्रेन में है। जिन प्रवचनों में मस्तिष्क के दो हिस्सों के फंक्शन ओशो ने समझाए हैं, उनमें से कुछ का जिक्र करता हूं-

एस धम्मो सनंतनो-43

मरौ हे जोगी मरौ-2

मरौ हे जोगी मरौ-20

जिन-सूत्र--28

पतंजलि योग-सूत्रः 75

पतंजलि योग-सूत्रः 81

उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र-7

अरी मैं तो नाम के रंग छकी-9

गीता दर्शन अध्याय 18, सातवां प्रवचन

सिर्फ मैंने हिंदी प्रवचनों की उपरोक्त सूची दी है। अगर कोई मित्र चाहे अंग्रेजी प्रवचन पढ़ना, तो उनकी बहुत लंबी लिस्ट बनेगी, जहां ओशो ने लेफ्ट ब्रेन और राइट ब्रेन के गुण गिनाए हैं, और कहीं पर मन व हृदय के गुण गिनाए हैं। आप मैच कर सकते हैं कि दोनों शब्दावलियों में एक ही बात है।

ओशो ने ऐसा नहीं कहा है कि Right Brain हृदय है, लेकिन उनकी जो क्वालिटीज गिनाई हैं उससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि एक ही सचाई की बात कर रहे हैं और भगवान कृष्ण की गीता और कठोपनिषद के जो मैंने प्रवचन गिनाए, उनसे भी स्पष्ट हो जाएगा। भगवान कृष्ण किस हृदय की बात कर रहे हैं? निश्चित ही वह एनाटॉमी वाला हार्ट नहीं है। कठोपनिषद का ऋषि शरीर के इस अंग का वर्णन नहीं कर रहा है।

अंधकार या विराटता से डर क्यों लगता है?

अंधेरे में उतरने का भय हमारी कंडिशनिंग है, हमारी मान्यता है। बचपन से हमें सिखाया गया, डराया गया। यद्यपि नौ महीने, माँ के गर्भ में हम घनघोर अंधेरे में थे। कोई डर नहीं था और पहली बार बच्चे का जन्म होता है, उसकी आँखे खुलती है, घबरा जाता है वो प्रकाश को देख के। काँप उठता है उस घबराहट में उसका रोना निकल जाता है। पहली बार प्रकाश देख के वो डरा! ये क्या है? लोग दिख रहे हैं आसपास डॉक्टर और नर्स। डॉक्टर और नर्स तो वैसे ही गंभीर होते है काफी और बेचारे को सीधा और जन्म होते ही से उल्टा लटका दिया टांग पकड़ के उसको। बड़ा अच्छा ढंग से स्वागत किया गया, शीर्षासन से और पीठ पर एक धोल जमाई। घबरा जाता है।

कहाँ से कहाँ आ गया वो? नौ महीने ओमकार में डूबा था। दिव्य आलोक में जो अंधेरे के तुल्य, उस में डूबा हुआ था। सब शांति ही शांति थी, सांस भी नहीं लेनी पड़ती थी। पहली बार उसकी सांस चली। हर चीज उसको घबराहट पैदा कर रही है। सांस क्या है? हवा भीतर जा रही है बाहर आ रही है, धौंकनी की तरह? क्या शुरू हो गया? बहुत घबरा जाता है वो। विशेषकर प्रकाश उसकी आँखें चौंधिया जाती है। लेकिन फिर बचपन में धीरे धीरे धीरे माता पिता ने, घर के अन्य लोगों ने अंधकार के प्रति डर पैदा किया। वो कही भी चला जायेगा जब वो चलने फिरने लगा। कैसे उसको रोकें? अंधेरे में खतरा हो सकता है, गिर सकता है। सांप बिच्छू हो सकते हैं। गड्ढे में पैर पड़ सकता है, सीढ़ी से लुढ़क सकता है। तो जरूरी है कि परिवार के लोग उसको रोके, अंधेरे में ना जाओ। उसको समझ में नहीं आता कि क्यों ना जाओ। वो तो मजे से जा रहा था। अब उसको बिठा लेना पड़ेगा, डर! माँ कुछ ऐक्शन करके बतायेगी, वहाँ पे हउवा रहता है। अब हउवा क्या है? बेचारा! वो जानता तो हैं नही। हउवा क्या है? है ना। लेकिन माँ के ऐक्शन देख के उसकी आंखें, वो डरी हुई और हाथ बना रही है। वो समझ जाता है कोई खतरनाक चीज है हउवा।

प्रभाकर दर्शन जी एक दिन ट्रेन में चढ़े, बोगी में अंदर बैठे। दूसरे स्टेशन से एक महिला आई, छोटे बच्चे को गोद में लिए हुए। वो बच्चा देख के बोला माँ द हउवा! इस बोगी में नहीं बैठेंगे। अब वो माँ बेचारी बड़ी संकोच में पड़ी कि नहीं- नहीं- अंकल है! वो बच्चा एकदम दूसरी तरफ मुँह करके रह गया, अंकल हउवा कहने लगा वो- ये अंकल हउवा है, यहाँ नहीं बैठेंगे! चीख चीखकर रोने लगा। उसकी माँ बेचारी ने बड़ी सॉरी कही, दर्शन जी से- कि मुझे, अच्छा नहीं लग रहा है। लेकिन, मैं चेंज कर ले रही हूँ कम्पार्टमेंट दूसरे में। तब कोई दूसरा याली वहाँ गया, बगल वाले डिब्बे से।

बच्चे के मन में स्वयं अपने आप कोई डर नहीं था। हमने उसको डराया क्योंकि, हम कुछ चीजों से बचाना चाह रहे थे। अब हर जगह तो उसके पीछे नहीं पड़े रह सकते 24 घंटे। हमने उसके मन में बैठा दिया, अंधेरे में बाबा रहता है। बाबा मतलब क्या? उसको बेचारे को कुछ नहीं पता, लेकिन जिस प्रकार से परिवार के लोगों ने बाबा शब्द कहा। उससे लगा कि जरूर कोई डरावनी चीज हैं। वो बाबा तुमको ले जाएगा। बच्चा इस बात से डरा कि माँ से बिछुड़ जाएगा। बाबा ले जाएगा मतलब माँ से बिछुड़ जाएगा। यह बात उसके लिए असहनीय है। धीरे धीरे हमने अंधेरे को कई चीजों से असोसिएट कर दिया, डरावनी चीजों से। वहाँ छिपकली रहती है वहाँ चूहा है, वहाँ ये है, वो है। कुछ चीजें वो जानता था, छिपकली और चूहा! उससे डरा दिया। जो चीजे वो नहीं जानता- बाबा और हउवा, भूत, चुड़ैल रहती है। वो डरने लगा, उसको मालूम कुछ नहीं है इस बारे में, क्या मतलब भूत का, क्या मतलब चुड़ैल का?

मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि मरने के बाद आदमी भूत द प्रेत, चुड़ैल बनता है कि नहीं? आपका क्या कहना है? नसरुद्दीन ने कहा कि आधी बात तो सच है कि पुरुष जो हैं मर के, भूत प्रेत बन जाते हैं। और जहाँ तक चुड़ैल का सवाल है, वो चुड़ैल ही रहती है। नो चेंज। वो छोटे बच्चे को, बेचारे को कुछ नहीं पता। अभी चुड़ैलों का भी नहीं पता। भूत प्रेतों का भी नहीं पता। लेकिन परिवार के लोग जो चेहरे पर एक्सप्रेशन दे रहे हैं, वो डरावना है और एक बात पक्की हो गयी कि अपने मम्मी पापा से बिछुड़ जाएगा। वो लोग पकड़ के उसको ले जाएंगे कहीं। उसने अंधेरे में

जाना बंद कर दिया। परिवार वालों का काम हो गया। वो यही चाह रहे थे, अंधेरे में ना जाएं ये। लेकिन अब उसके मन में डर बैठ गया।

फिर वो बच्चा बड़ा हो जाता है। 50 साल की उम्र में हम उससे कहते हैं आँखें बंद कर लो, पट्टी बांध लो। जहाँ उसने देखा अंधेरा, तो पुरानी सारी स्मृतियाँ जो कंडीशनिंग की गई है उसको, अंधेरे के संग, वो सब उभर के आ जाती है। अगर वो जबरदस्ती रोकने की भी कोशिश करें कि थोड़ी देर तो लगी रहने दो पट्टी। फिर उसको दिखने लगते है भूत प्रेत, चुड़ैल सब आने जाने लगते है। ऐसा उसकी मनगढ़ंत कल्पना है, लेकिन वो क्या करे? बहुत गहरी कन्डिशनिंग है। खूब बचपन में जब वह बड़ा श्रद्धालु था। उसको तर्क वितर्क नहीं आता था। उसको संदेह करना नहीं आता था। वह किसी बात पे शक नहीं कर सकता था। उसके मन में प्रश्न भी पैदा नही होते थे। वह हर चीज स्वीकार कर लेता था। माँ ने कहा- इसका नाम पानी है, तो वो पानी कहने लगा। उसने कोई सवाल थोड़ी उठाया कि पानी क्यों कहते हैं? हम कुछ और कहेंगे। किसी बच्चे ने आज तक ऐसा कहा? बिल्कुल श्रद्धालु! हमने कहा कि इसका नाम रोटी है तो रोटी कहने लगा। कभी कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ। ये रोटी क्यों? हम टीरो कहेंगे। रोटी को हम मोटी कहे तो क्या हर्जा है? नहीं, कभी उसके मन में कोई सवाल नहीं आता।

उसको बताया गया कि ए बी सी डी ऐसा लिखते हैं। टीचर ने बताया, उसने बिल्कुल मान लिया और टीचर पर तो उसको इतना भरोसा था। फिर घर के लोग भी अगर कहे कि ऐसा नही बेटा, ऐसा। वो कहे- ष्नहीं, मैडम ने कहा है। ष् मैडम उसके लिए परमात्मा से भी ऊपर है। हमारी मैडम ने बताया है, ए ऐसा लिखते हैं। अब आप बदलवा नहीं सकते, उसको। बहुत श्रद्धालु बच्चा जो उसने सुना वो उसने मान लिया। 100% मान लिया। फिर हम बड़े हो गए, बुद्धि आ गयी, विवेक आ गया। संदेह करने की प्रवृत्ति जन्म गई। अन्य चीजों को हम अपने तर्क से कसौटी पे कसने लगे, क्या ठीक क्या गलत। लेकिन जो बचपन की धारणा बैठ गयी है, उसको बदलना बड़ा मुश्किल। बहुत गहरे में जड़ें उसकी जमी हुई है। किसी का अंधेरे से डर है, किसी का ऊँचाई से डर है। अब बचपन में मजबूरी थी, माता पिता करें तो क्या करे? वो बच्चा तो बड़े आराम से सीढ़ियों पे उतरने लगा। दूसरों को तो पता है, कितना खतरा है। जरा सा पैर फिसला, वो गिर जाएगा लुढ़कते हुए। अभी हाथ पैर टूट जाएंगे, सिर फट जाएगा, कुछ भी हो सकता है। उसको डराना तो पड़ेगा, नहीं तो वो टेबल पे खड़े होके कूद जाएगा। उसको तो कुछ नहीं पता कि क्या होगा? हमको उसके भीतर भय पैदा करने पड़ेंगे कि ऊँचाई से भय।

शायद जरूरी है, इसके बिना काम चलाना मुश्किल है। पानी से डर पैदा करना पड़ेगा, नहीं तो डूब जाएगा। मुसीबत तब खड़ी होती है जब उसकी उम्र हो गई और अब वो नदी में तैरने जा सकता है और डर के मारे अब भी नहीं जाता। पानी देख के उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अब उसके भीतर इच्छा भी है कि स्विमिंग पूल में मैं भी तैरु। दोस्तों के साथ मजा करु, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ती। ऊँचाई पे नीचे देखके एकदम प्राण कप जाते है। ठीक वही बात आपने कहा। आंख बंद कर कह रहे हैं कि आंख बंद नहीं कर पाता। पट्टी नहीं लगा पाता आंख पे, डर के मारे।

एक सज्जन यहाँ आते हैं। उनकी डिमांड रहती है कि हमको ऐसा कमरा दो, जिसमे हम दरवाजा खोल के रखेंगे रात को। वो दरवाजा नहीं बंद कर सकते। अब बड़ी मुश्किल है। उस कमरे में दूसरे व्यक्ति भी है, वो कहेंगे दरवाजा बंद करो। अब एसी कमरा है, दरवाजा खोल के रखोगे तो पूरी गर्म हवा भीतर आ रही है। वो कहेंगे कि ष्नहीं आने दो, एसी बंद कर देंगे कोई बात नही! दरवाजा नहीं बंद कर सकते। वो कहते हैं दरवाजा बंद करने से ना मालूम मुझे क्या होता है? काफी बुजुर्ग हैं वो। 70 साल से ऊपर उनकी उम्र है। उनके बिल्कुल हाथ पैर कांपने लगते है, डर के मारे। दरवाजा बंद करने से कि घुट जाएंगे, पता नहीं क्या हो जाएगा। उनसे कई बार पूछा कि ऐसी कोई घटना घटी है क्या आपको? वो बोले ऐसा कुछ स्मरण नहीं पड़ता। अब इनके जनम में कुछ ऐसा हुआ होगा। कहीं ऐसी जगह वो फंस गए जहाँ से भाग ना सके।

ऐसा समझो कि कहीं आग लग गई और कोई आदमी मर गया। कहीं बंद था वो कमरे में और बाहर निकलने का कोई उपाय ही नहीं था या भूकंप आ गया, पहाड़ फिसल गया। इनका घर दब गया पहाड़ के नीचे। ये घर के अंदर है लेकिन सब तरफ से मिट्टी और चट्टानें और घुट घुटके के वहाँ मर गए। ऐसी कोई घटना किसी के संग घट गयी। अब उसे डर लगता है कि दरवाजा बंद नहीं करेंगे। उनके साथ इसकी इतनी मुश्किल खड़ी हो जाती थी कि धीरे धीरे फिर उन्होंने आना ही बंद कर दिया। इच्छा तो उनकी रहती कि मेन गेट भी खुला रखो। कह रहे एकदम से निकलके भागना हुआ तो कमरे का दरवाजा तो मान लो कि हमने खोल के रखा है। ठीक है अब नहीं चिंता मच्छर काटेंगे काटने दो। साँप आ जाता है तो आ जाने दो। उनको उन चीजों से डर नहीं है कि मच्छर काट लेंगे, मलेरिया हो जाएगा, चिकनगुनिया हो जाएगा। उससे ज्यादा खतरनाक उनको इमीडिएट, चिकनगुनिया जब होगा तब होगा, सबको थोड़ी होता है। मलेरिया जब होगा तब देखेंगे, दवाई खा लेंगे। अगर दरवाजा बंद किया तो अभी ऐसे लगता है जैसे कि दम घुट गई बस। धीरे धीरे उन्होंने यहाँ आना ही बंद कर दिया। वो कहते, मेन गेट तो बंद है, मान लो, एक दम से भागना पड़ा तो कुछ। तो वहाँ दरबान नहीं है, कुछ नहीं है। ताला लगा है फिर क्या करेंगे?

उनके भय को सोचकर अन्य लोगों को हँसी आएगी जिनको ऐसे वाला भय नहीं है। अंधेरे वाली बात बहुत कॉमन है। दो मिनट को बिजली चली जाती है। कितने लोग उसी मैं घबरा जाते है। लिफ्ट में जा रहे है और बिजली चली गयी यहाँ तो दिन में 20-25 तो बिजली जाती ही जाती है। वहाँ लिखा हुआ है सब कुछ है कि थोड़ी देर लगेगी वापिस। अब बीच में कही लिफ्ट अटक गई। ना इस मंजिल पे है ना ऊपर वाली मंजिल पे है, बीच में है, जरा सा धीरज रखो, नही! लोग उसमें इतने बेचौन हो जाते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। दो तीन मिनट अकेले, नहीं गुजार सकते। अंधेरे का डर भी बचपन का बैठा हुआ डर है।

इससे कैसे हम निपटे? आज तो मैंने बताया कि कारण क्या है? अब इसका निवारण कैसे हो? थोड़ा कठिन मामला है। धैर्यपूर्वक अगर आप प्रयोग करेंगे। इस डर के बाहर निकल सकेंगे। यह डर या अन्य कोई भी डर, सभी डरों के ऊपर वो एक ही चीज लागू होगी जो मैं आगे बताऊँगा। कारण जो उनके जो कुछ भी हो। जहाँ कहीं से भी वो पैदा हुए चाहे इस जनम में चाहे पिछले जन्म के किसी अनुभव से। उनसे बाहर निकलने का उपाय किया जा सकता है। दो तीन महीने धैर्यपूर्वक कोई प्रयोग करेगा। उन डरो से बाहर हो जाएगा।

इंसान जीवन भर सिर्फ कमाने के लिए दोडता ओर आखिर में मर जाता है तो फिर क्या मिलता है उसे?

उसे फिर दूसरा जन्म मिलता है। यदि अगले जन्म में भी उसने यही भूल की तो फिर आगे और नया जन्म मिलने जाता है।

परमात्मा कंजूस नहीं है। हमें बारंबार अवसर देता है कि हम कुछ सीखें। यह संसार एक पाठशाला है। जब तक हम पास नहीं हो जाते हमें बारंबार आना होगा।

परम आनंद जीवन का लक्ष्य है। इस पाकर इंसान उत्तीर्ण हो जाता है और आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

"जन्म और मृत्यु में केवल सापेक्ष हैं"--ओशो के इस विचित्र से दिखने वाले वचन का अर्थ उजागर कीजिए?

नीचे की सीढ़ी दिखाई पड़े, ऊपर की सीढ़ी दिखाई पड़े और बीच की सीढ़ियां दिखाई न पड़ें, तो हमें ऐसा लगेगा कि नीचे की सीढ़ी और ऊपर की सीढ़ी बड़ी दूर, बड़े फासले पर, अलग-अलग चीजें हैं। ऊपर और नीचे विपरीत नहीं केवल सापेक्ष स्थितियां हैं।

ठीक इसी प्रकार अगर बचपन और बुढ़ापा उलटी चीजें हैं, तो कोई बच्चा कभी बूढ़ा नहीं हो सकता। ये दोनों विपरीत नहीं बल्कि एक ही डंडे के दो छोर हैं।

रिलेटिविटी के मुताबिक ठंडा और गरम एक ही चीज के अनुपात हैं। नरक और स्वर्ग में गुण का फर्क नहीं है, मात्रा का ही फर्क है। हमारी प्रेम भावना और घृणा में एक ही तत्व के कम-ज्यादा अनुपात हैं। इसीलिए तो दोस्ती कभी भी दुश्मनी में बदल सकती है।

जन्म में और मृत्यु में भी इतना ही फर्क है। यह सारी मनुष्य-जाति सीजोफ्रेनिक हो गई है। उसका मस्तिष्क खंड-खंड में, डिसइंटिग्रेटेड, टुकड़े-टुकड़े में टूट गया है। उसके टूटने का कारण है।

हमने सारे जीवन को खंड-खंड में लिया है, और खंडों को विरोधी समझ लिया है। जबकि सब कुछ अखंड और सापेक्ष है।

जन्म और मृत्यु में भी सापेक्ष हैं। दोनों के पार जो 'अमृत जीवन' है, ये दोनों उसके आरंभ और अंतिम बिंदु हैं। वह 'अमृत जीवन' प्रवेश पाता है किसी देह में, और कभी उसका निष्कासन हो जाता है। वह स्वयं न कभी उत्पन्न होता, न समाप्त होता। वह चैतन्य, सनातन सत्य है, सदा से था और सदा रहेगा। शरीर नूतन और पुरातन होता है। बनता, मिटता है।

ओशो ने अपनी समाधि पर अंकित करवाया-

ओशो, जो न कभी जन्मे, न कभी करे।
केवल इस ग्रह पर विचरण करने आए
11 दिसंबर 1931 से -- 19 जनवरी 1990 तक

ओशो को सिखाना तो चाहिए जीवन की कला, फिर वे मरने की बात क्यों सिखाते हैं?

ओशो के शब्दों में-- *'मैं जीवन की कला भी कह सकता हूं, लेकिन नहीं कहूंगा, क्योंकि आप जीवन के प्रति अति मोह से भरे हुए हैं। जब मैं कहूंगा कि जीवन सीखने आएं, तो आप जरूर भागे हुए चले आएंगे, क्योंकि आप अपने जीवन के मोह को परिपुष्ट करना चाहेंगे। इसलिए मैं जान बूझकर कहता हूं, मृत्यु की कला। यद्यपि 'परम जीवन' में न जन्म है, न मृत्यु है। शाश्वत, दिव्य, परम जीवन के ये दो पैर हैं, जिन्हें हम जन्म और मृत्यु कहते हैं। मैं मरने की कला ही सिखा रहा हूं। क्योंकि जो मरने की कला सीख लेता है, वह जीवन की कला में भी निष्णात हो जाता है। जो मरने के लिए राजी हो जाता है, वह परम जीवन का अधिकारी भी हो जाता है। सिर्फ वे ही जो मिटना जान लेते हैं, वे ही होना भी जान पाते हैं।'*

सरिता जब सागर में गिरती, तब सागर बन जाती
खुद मिटने का मूल्य चुका के वह अमृत बन जाती।
बीज अगर न गले भूमि में, अंकुर कैसे उपजेगा?
विशाल वृक्ष का रूप धरेगा और फलेगा-फूलेगा।
लघु कंकड़ सा दिखने वाला, गगनचुंबी हो जाता है
फिर रंगों की होली खेलता और सुगंध फैलाता है।
रंग-गंध बिखराता है, रंग-गंध बिखराता है।

मनुष्य भी एक बीज है परमात्मा का। बुद्धत्व उसका फूल है- सहस्रदल कमल का खिलना। इंसान की तरह अपनी जिंदगी की नदी को खोने को जो राजी है, वह भगवान रूपी महासागर की तरह हो जाता है। इस साधारण से जीवन में से परम जीवन, प्रभुमय जीवन का विकास होता है।

क्या आत्महत्या करने वाले लोग साहसी होते हैं और मृत्यु से नहीं डरते?

मृत्यु से तो वे भी डरते हैं। लेकिन वे मृत्यु से भी ज्यादा जीवन से डर गए होते हैं। *जीवन, उनको मृत्यु से भी ज्यादा दुखद मालूम पड़ने लगता है। वे साहसी नहीं होते, सामान्य व्यक्ति से अधिक कायर होते हैं। जिंदगी की समस्याओं को झेलने में असमर्थ होते हैं। कोई विद्यार्थी यदि परीक्षा भवन से भाग खड़ा हो तो हम उसे बुद्धिमान नहीं कहेंगे, पलायनवादी कहेंगे। उसे बुद्धिहीन और भगोड़ा कहेंगे। वह बेचारा प्रश्नपत्र देखकर भयभीत हो गया।*

आत्महत्या करने वाला सिर्फ डरपोक ही नहीं, औसत व्यक्ति से अधिक मोहग्रस्त भी होता है। वह जीना चाहता है अपनी शर्तों के मुताबिक। अगर वे शर्तें पूरी न हो पाएं तो वह मरने को तैयार है। अपनी शर्तों से उसे बड़ा लगाव है। जीवन के प्रति स्वीकार भाव का अभाव है। परिस्थिति में मन के प्रतिकूल बदलाव, परिवर्तन उसे नामंजूर हैं। उसमें साहस और स्वीकार भाव की कमी ही नहीं, समझ की भी कमी है। जीवन के विभिन्न रंगों में ढलने की बुद्धिमत्ता उसमें नहीं है। वह लोचपूर्ण नहीं है, सामंजस्य नहीं कर सकता। अपने अनुसार दुनिया को चलाना चाहता है। वह बड़ा अहंकारी होता है।

ये जन्म मृत्यु कुछ भी नहीं बस इतनी सी बात है
किसी की आंख खुल गई? किसी को नींद आ गई

ओशो की इन दोनों बातों में से कौन-सी बात सच है-- 1 मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं है। 2 मृत्यु जैसी कोई चीज ही नहीं है?

ये दोनों ही बातें सच हैं। आम इंसान के लिए पहली बात सच है। आत्मज्ञानी के लिए दूसरी बात सच है। जैसे छाया है, नहीं भी है। प्रकाश का होना है और प्रकाश का न होना भी है, किंतु वस्तुतः अंधकार जैसी कोई चीज नहीं है।

सामान्य आदमी के लिए मौत सबसे बड़ा तथ्य है। *शेष सब अनिश्चित है, संभावित है, कुछ पक्का नहीं। सिर्फ मौत ही सौ प्रतिशत सुनिश्चित है। सोए हुओं के लिए जिंदगी सपने जैसी है। क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है। जिसे हम बस्ती कहते हैं, वह बस कहां पाती है? निरंतर उजड़ती ही रहती है। फकीर मरघट को बस्ती*

जागे हुए प्रबुद्ध पुरुष के लिए 'परम जीवन' सत्य है। मौत वस्त्र बदलने जैसी है। शरीर कपड़ों से ज्यादा नहीं है। आत्मा, चेतना ड्राइवर है, भौतिक काया वाहन है। वाहन चलते चलते खराब हो जाता है। तब उसको चलाने वाला उसे छोड़कर दूसरे वाहन में सवार हो जाता है।

आदमी की हयात कुछ भी नहीं
बात यह है कि बात कुछ भी नहीं।
आदमी पैरहन बदलता है।
ये हयातो-मयात कुछ भी नहीं।

मृत्यु के संबंध में हम सोचें ही क्यों?

ओशो कहते हैं कि वर्तमान क्षण में जियो। भविष्य की ओर नजर मत करो। वे यह भी कहते हैं कि 'मैं मृत्यु सिखाता हूँ'--इसकी जरूरत ही क्या है? आम तौर पर हम यही सोचते हैं कि घटना जो बहुत दूर कहीं भविष्य में घटित होगी, हम उस बारे में क्यों सोचें? किंतु अगर इतना भी सोचा कि मृत्यु के विचार को क्यों बीच में आने दें, तो भी मृत्यु का विचार आ ही गया है। यह भी भ्रांति है कि मृत्यु भविष्य में घटित होगी, मृत्यु प्रतिपल घटित हो रही है। मौत एक क्रमिक प्रक्रिया है, अचानक हुई घटना नहीं है। *जैसे कोई आदमी मुंबई से चल पड़े दिल्ली के लिए, तो जो पहला कदम*

उठाएगा, वह भी दिल्ली के लिए ही उठाया जा रहा है। जो अंतिम कदम उठाएगा, वह भी दिल्ली के लिए ही उठाया जा रहा है। ठीक ऐसे ही जन्मोपरांत हमारा हर कदम श्मशान घाट की ओर है।

यद्यपि गर्म होने की प्रक्रिया में पानी भाप तो सौ डिग्री पर बनेगा। लेकिन पहली डिग्री पर भी भाप बनने के करीब पहुंचने लगा। जन्म होते ही बच्चे के मस्तिष्क के 5000 न्यूरॉन, ब्रेन सैल प्रतिदिन मरने लगते हैं। 80 साल की उम्र में करीब 25 प्रतिशत दिमाग मर चुकता है। *जिस दिन जीवित न्यूरॉन की गिनती इतनी कम हो जाती है कि देह को संचालित नहीं कर सकती, उस दिन मौत की प्रक्रिया पूरी होती है। वह धीमी गति से चलने वाली एक प्रक्रिया है, अचानक हुई घटना नहीं है। वर्तमान में हम क्षण-क्षण मर रहे हैं। आकाश के चौथे आयाम यानी समय में गति नहीं रूक सकती।*

डॉ. अनिल जैन 'अनिल' की कविता--

पांच तत्व में भार है माटी, काया का आकार है माटी
माटी में तन मिल जाता है, इस जीवन का सार है माटी
नभ, जल, पावक और पवन का जोड़ने वाला तार है माटी
जंगल, पर्वत, दरिया, प्राणी, सब तेरा उपकार है माटी
माटी से ही जन्मे जीवन, समा जाता संसार है माटी
रूप नया धरने को फिर-फिर, हो जाती तैयार है माटी
सब रंग-रूपों में ढ़ल जाती, फिर भी निराकार है माटी
उठती-गिरती लहरें जिसमें, वो सरिता की धार है माटी
पहाड़ माटी की उठती तरंग है,
खाई माटी की गिरती तरंग है।

क्या कोई ऐसी विधि या ध्यान का तरीका है जिससे व्यक्ति अपने अभी तक के सभी जन्मों की सम्पूर्ण यात्रा को देख/जान सके?

चेतना की विशुद्ध अवस्था है- जहां कोई विचार नहीं होते, कोई विषय नहीं होता। साधारणतया हमारी चेतना विचारों से, विषयों से, कामनाओं से आच्छादित रहती है। जैसे कि कोई दर्पण धूल से ढका हो। हमारा मन एक सतत प्रवाह है- विचार चल रहे हैं, कामनाएं चल रही हैं, पुरानी स्मृतियां सरक रही हैं- रात-दिन एक अनवरत सिलसिला है। नींद में भी हमारा मन चलता रहता है, स्वप्न चलते रहते हैं। यह अ-ध्यान की अवस्था है। ठीक इससे उल्टी अवस्था ध्यान की है। जब कोई विचार नहीं चलते और कोई कामनाएं सिर नहीं उठातीं- वह परिपूर्ण मौन ध्यान है। उसी परिपूर्ण मौन में सत्य का साक्षात्कार होता है। जब मन नहीं होता, तब जो होता है, वह ध्यान है।

इसलिए मन के माध्यम से कभी ध्यान तक नहीं पहुंचा जा सकता। ध्यान इस बात का बोध है कि मैं मन नहीं हूं। जैसे-जैसे हमारा बोध गहरा होता है, कुछ झलकें मिलनी शुरू होती हैं मौन की, शांति की जब सब थम जाता है और मन में कुछ भी चलता नहीं। उन मौन, शांत क्षणों में ही हमें स्वयं की सत्ता की अनुभूति होती है। धीरे-धीरे एक दिन आता है, एक बड़े सौभाग्य का दिन आता है, जब ध्यान हमारी सहज अवस्था हो जाती है।

मन असहज अवस्था है। यह हमारी सहज-स्वाभाविक अवस्था कभी नहीं बन सकता। ध्यान हमारी सहज अवस्था है, लेकिन हमने उसे खो दिया है। हम उस स्वर्ग से बाहर आ गये हैं। लेकिन यह स्वर्ग पुनः पाया जा सकता है। किसी बच्चे की आंख में झांके और वहां आपको अद्भुत मौन दिखेगा, अद्भुत निर्दोषतादिखेगी। हर बच्चा ध्यान के लिए ही पैदा होता है- लेकिन उसे समाज के रंग-ढंग सीखने ही होंगे। उसे विचार करना, तर्क करना, हिसाब-किताब, सब

सीखना होगा। उसे शब्द, भाषा, व्याकरण सीखना होगा। और धीरे-धीरे वह अपनी निर्दोषिता, सरलता से दूर हटता जाएगा। उसकी कोरी स्लेट समाज की लिखावट से गंदी होती जाएगी। वह समाज के ढांचे में एक कुशल यंत्र हो जाएगा- एक जीवंत, सहज मनुष्य नहीं।

बस उस निर्दोष सहजता को पुनः उपलब्ध करने की जरूरत है। उसे हमने पहले जाना है, इसलिए जब हमें ध्यान की पहली झलक मिलती है, तो एक बड़ा आश्चर्य होता है कि इसे तो हम जानते हैं! और यह प्रत्यभिज्ञा बिलकुल सही है- हमने इस पहले जाना है। लेकिन हम भूल गये हैं। हीरा कूड़े-कचरे में दब गया है। लेकिन हम जरा खोदें तो हीरा पुनः हाथ आ सकता है- वह हमारा स्वभाव है। उसे हम खो नहीं सकते, उसे हम केवल भूल सकते हैं।

हम ध्यान में ही पैदा होते हैं। फिर हम मन के रंग-ढंग सीख लेते हैं। लेकिन हमारी वास्तविक स्वभाव अंतर्धारा की तरह भीतर गहरे में बना ही रहता है। किसी भी दिन, थोड़ी सी खुदाई और हम पाएंगे कि वह धारा अभी भी बह रही है, जीवन-स्रोत के झरने ताजा जल अभी भी ला रहें हैं। और उसे पा लेना जीवन का सबसे बड़ा आनंद है।

~ओशो

ओशो जी के जीवन और मृत्यु के प्रवचन इतने उदासीन करने वाले क्यों है?

यदि किसी बच्चे से कहा जाए कि तुम्हारे खिलौने सिर्फ खिलौने हैं। यह बैटरी से चलने वाली हवाई जहाज कहीं ले नहीं जा सकती। तो उसे उदास करने के लिए ऐसा नहीं कहा जा रहा, बल्कि वास्तविकता से परिचय कराने के लिए तथ्य की उद्घोषणा की जा रही है।

किसी सोए हुए व्यक्ति से अगर हम कहें कि तुम दुखद सपना देखकर व्यर्थ ही डर रहे हो अथवा सुखद स्वप्न देखकर तुम्हारा खुश होना कोई मायने नहीं रखता। ऐसा वक्तव्य उसे उदासीन करने के लिए नहीं बल्कि सच्चाई के प्रति जागृत करने के लिए है।

ओशो जब कहते हैं कि तथाकथत जीवन-मृत्यु की समस्त घटनाएं और सब प्रकार की यात्राएं, यहां तक कि अंतर्यात्रा वाली ध्यान विधियां इत्यादि भी सपने के समान हैं; तब उनका उद्देश्य यह है कि हम जागें और चैतन्य होकर परम आनंद को जानें।

शब्दों पर मत जाइए, उनके पीछे छिपे उद्देश्य को समझकर, सत्य गृहण कीजिए।

क्या आत्म-सृजन के लिए विद्रोही होना उचित है?

सूफी कथाः दायित्व की गरिमा, आत्म-सृजन के लिए विद्रोह।

एक बादशाह को ख्याल था कि उसने जो जाना और माना है, वह सब सही है। एक अर्थ में वह न्यायप्रिय भी था। उसकी तीन बेटियां थी। एक दिन राजा ने अपनी सभी बेटियों को बुला कर कहाः मेरी सारी संपदा तुम्हारी होने वाली है। मुझसे ही तुम्हें जीवन मिला और मेरी इच्छा से ही तुम्हारा भविष्य और भाग्य निर्मित होगा।

दो राजकुमारियों ने तो यह बात मान ली; लेकिन तीसरी ने कहाः यद्यपि स्थिति का तकाजा है कि मैं कानून का पालन करूं, तो भी यह नहीं मान सकती कि मेरा भाग्य आपकी मरजी से बनेगा। हम देखेंगे, यह कह कर राजा ने बागी बेटी को कैद में डाल दिया, जहां वह वर्षों कष्ट झेलती रही। इस बीच उसके हिस्से का धन भी बादशाह और वफादार बेटियों ने मिल कर खर्च कर दिया। और तब बादशाह ने स्वयं कहाः यह लड़की अपनी नहीं, मेरी मरजी से कैद काट रही है। इससे स्पष्ट है कि मेरी इच्छा ही उसकी नियति है। और प्रजा भी राजा की राय से राजी थी।

बीच-बीच में राजा ने बंदी बेटी से अपनी मनवाने के बहुत उपाय किये, लेकिन सारी यातनाओं के बावजूद राजकुमारी ने विचार नहीं बदला। अंत में राजा ने राज्य के बाहर एक डरावने जंगल में उसको छुड़वा दिया, जहां हिंस्र पशुओं के साथ-साथ ऐसे खतरनाक आदमी भी थे, जिन्हें राज्य देश-निकाले की सजा दिया करता था। लेकिन जंगल में पहुंच कर राजकुमारी ने पाया कि गुफा घर है और पेड़ों के फल सोने के थाल वाले फलों जैसे ही हैं। फिर उस जंगल की आजाद जिंदगी का क्या कहना! और उस कुदरती राज्य में कोई भी तो उसके राजा-पिता की आज्ञा नहीं मानता था।

फिर किसी दिन एक भूला-भटका, किंतु समृद्ध यात्री उस जंगल में पहुंचा। वह राजकुमारी के प्रेम में पड़ा, उसे वह अपने देश ले गया और वहां जाकर उसने उससे विवाह कर लिया। अरसा बाद दोनों उसी जंगल में वापस आए, जहां उन्होंने अपनी बुद्धि, साधन और श्रद्धा के अनुरूप एक नगर बसाया, जिसकी लयबद्ध जिंदगी में वहां के सारे बहिष्कृत पगले घुल-मिल गए। राजकुमारी और उसके पति उसके प्रधान चुने गए। धीरे-धीरे नये राज्य का यश सारी दुनिया में फैल गया। और उसके सामने राजकुमारी के पिता का राज्य फीका पड़ने लगा। अंत में एक दिन बादशाह स्वयं इस नये नगर को देखने आया।

और जब वह सिंहासन के पास पहुंच रहा था, तभी उसके कानों में अपनी ही बेटी के ये शब्द सुनाई पड़ेः प्रत्येक नर-नारी की अपनी नियति है और अपना चुनाव है।

ऐसा क्या करें, जीवन बिल्कुल आसान हो जाए?

आसान है जीवन. जटिल है हमारा मन.

इसलिए जीवन को न सुलझाइए.

बस, मत को मत उलझाइए

ओशो के अनुसार "जीवन-कला" कैसी होनी चाहिए?

ओशो के अनुसार 'जीवन-कला' ऐसी होनी चाहिए--

कला के विभिन्न रूपों के माध्यम से हम अपनी सृजनात्मक योग्यता को प्रदर्शित करना सीखते हैं। जैसे कि पेंटिंग, संगीत, नाटक, कविता, फिल्म निर्माण, नृत्य, फोटोग्राफी, मूर्तिकला, और अन्य बहुत सारे आयाम। किंतु कभी हम नहीं सोचते कि जीवन जीने की कला भी सीखनी चाहिए। हम मानकर ही चलते हैं कि हमें तो जीना आता है।

इसी भ्रांति की वजह से जिंदगी में इतने तनाव, संघर्ष, कलह और दुख हैंः घर-परिवार, संबंध, कर्मस्थल, संस्था, समाज और राष्ट्र के तलों पर। जन्म लेना ही पर्याप्त नहीं है, जीने की कला सीखनी होगी ताकि जिंदगी सुंदर, मनोहारी, शांतिपूर्ण, प्रीतिपूर्ण और आनंदमय बन सके।

छोटी-छोटी चीजों का हम सालों प्रशिक्षण लेते हैं--गणित, भाषा, भूगोल, इतिहास, विज्ञान और बहुत कुछ! सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय किसी स्कूल-कॉलेज में नहीं सिखाए जा रहे--भावनाओं का परिष्कार और चेतना का निखार। ओशो के अनुसार यही बड़ी से बड़ी सृजनात्मक कला है। इसी में मनुष्य की गरिमा और महिमा है।

जीवन का लक्ष्य क्या है?

जीवन का लक्ष्य व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न होता है। क्योंकि इसका निर्धारण व्यक्ति की मान्यतानुसार अलग-अलग हो सकता है। हर व्यक्ति की अपनी व्यक्तिगत प्राथमिकताएं, मूल्य, आकांक्षाएं और संघर्ष होते हैं, जो उनके जीवन के लक्ष्य को प्रभावित करते हैं। व्यक्तियों के लक्ष्य उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक और आध्यात्मिक परिवेश से प्रभावित होते हैं। कुछ लोगों के लिए लक्ष्य ऐसी वस्तुओं पर आधारित हो सकता है जो वे प्राप्त करना चाहते हैं, जैसे कि सफलता, धन, शांति, खुशहाली या सम्मान। दूसरे लोगों के लिए लक्ष्य हो सकता है- विशेष कार्यों या योग्यताओं का विकास जैसे कि कला, विज्ञान, सेवा, योग, धार्मिक अनुभव या आध्यात्मिक उन्नति।

लक्ष्य व्यक्ति के जीवन को मार्गदर्शन देता है, उसे प्रेरित करता है और उसकी जीवन-ऊर्जा को सुसंगठित करने में मदद पहुंचाता है। अपने कार्यों और निर्णयों का मूल्यांकन करने में, संतुष्टि और सुख का अनुभव करने में और अंततः उसे उच्चतम सामर्थ्य और उपलब्धियों की प्राप्ति में मदद करता है। जीवन का लक्ष्य व्यक्ति के अनुभव, आदर्श, आंतरिक मूल्यों, प्राथमिकताओं और अंतर्दृष्टि पर निर्भर करता है। अंतर्निहित प्रकृति, समय की जरूरत और उद्देश्य के साथ जुड़ा हो सकता है। हर व्यक्ति को अपने जीवन के लक्ष्य को खोजने, निर्धारित करने और प्राप्त करने का अधिकार है। यह आगे बढ़ने का मौका देता है और उसे संघर्ष में कुशल बनाता है। हमारी चार तलों पर यानी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक जरूरतें प्रमुख हैं।

पश्चिमी मनोवैज्ञानिक लाखों लोगों की जिंदगी के अनुभवों का निरीक्षण करके कहते हैं कि जिंदगी में जिन्हें सर्वस्व मिल गया, वे भी संतुष्ट नहीं होते हैं। अब्राहम मैस्लो ने आवश्यकताओं की सीढ़ी बनाई, और अंत में ऊपर की सीढ़ी को खुला छोड़ दिया। क्योंकि आदमी चाहता क्या है, समझ नहीं आता! भारत के ऋषियों ने ज्यादा सुंदर और संपूर्ण सोपान निर्मित किया है। हिंदू धर्म में जीवन के चार मुख्य आदर्श होते हैं। इन्हें अर्थ, काम, धर्म, और मोक्ष के नाम से जाना जाता है। अर्थ के द्वारा इस संसार में लौकिक कामनाओं की पूर्ति होती है। धर्म के द्वारा पारलौकिक कामना अर्थात मोक्ष प्राप्ति होती है।

ओशो कहते हैं कि चमत्कार नहीं होते। फिर अतीन्द्रिय क्षमताएं कैसे घटित होती हैं?

अतीन्द्रिय क्षमताओं को चमत्कार नहीं कह सकते। उनके पीछे छिपा कार्य-कारण सिद्धांत है। चमत्कार का अर्थ है बिना कारण के कार्य हो रहा है। सामान्यतः हम जिन्हें चमत्कार कहते हैं, उनके पीछे भी कारण मौजूद रहता है, किंतु अज्ञानवश हमें महसूस नहीं होता। आप मोबाइल को लेकर कहीं जंगल में आदिवासियों के बीच पहुंच जाएं, तो वे चमत्कृत हो जाएंगे। आडियो और वीडियो काल पर बात करते हुए देखकर आपकी पूजा करने लगेंगे। हमें मोबाइल फोन की टेक्नीक का ज्ञान है, उन्हें नहीं है।

ठीक ऐसे ही अध्यात्म की भाषा में जिसे आज्ञा चक्र या शिवनेत्र कहते हैं, तीसरी आंख, थर्ड आई कहते हैं, सिक्स्थ सेंस या छटवीं इंद्रिय भी पुकारते हैं, मेडिकल ज्ञान के मुताबिक वह पिनीयल ग्लैंड है। मस्तिष्क के आगे वाले हिस्से के मध्य में स्थित इस ग्रंथि पर ध्यान देने से अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास होने लगता है। जैसे- बिना आंख खोले देखने की शक्ति, टेलीपैथी।

आधुनिक युग में जापान में विकसित हुई इस टेक्नीक को मिड ब्रेन एक्टिवेशन कहा जाता है। 8 से 16 वर्ष की आयु वाले बच्चों में यह प्रक्रिया बड़ी आसानी से हो जाती है। 16 साल के बाद पिनीयल ग्लैंड प्रायः कैल्सीफाइड होने लगती है। दोनों भृकुटियों के बीच चंदन का टीका लगाने से आज्ञा चक्र की सक्रियता बढ़ती है।

सैद्धांतिक रूप से समझने ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक एवं प्रायोगिक रूप से अनुभव करने के लिए ओशो फ्रेगरेंस के इस शिविर में भाग लीजिए—"मिड ब्रेन एक्टिवेशन"

'विद्या वही है जो मुक्त करे'-- आधुनिक युग में इस प्राचीन उक्ति का यथार्थ रूप कैसे संभव है?

एक बार रजनीशपुरम, अमेरिका में भारत से एक पत्रकार आये हुए थे इंटरव्यू लेने के लिए। उन्होंने ओशो से पूछा था कि भारत के विश्वविद्यालयों में लिखा रहता है 'विद्या वही है जो मुक्त करे'। लेकिन ऐसा कहीं दिखाई तो नहीं देता। हम जिसको ज्ञान कहते हैं वह तो और बंधन में बांध देता है, कट्टरपंथी बना देता है।

जो भी हमें ज्ञान मिला है चाहे वो परिवार से, धर्म से, गुरु से, विद्यालयों से, वह तो हमारा बंधन बन जाता है। हम सिर्फ उसी को सही मानने लगते हैं और शेष सब के खिलाफ हो जाते हैं। ओशो ने कहा यह वास्तविक विद्या नहीं है। ऋषि जिसको विद्या कह रहे हैं वह तो मुक्तिदायी होगी, इन सब से छुटकारा दिला देगी। विचार शून्यता, धारणा शून्यता, अमनी दशा--वास्तव में तो ध्यान ही विद्या है। उस प्रवचन का अंग्रेजी वीडियो उपलब्ध है।

उस समय राजीव गाँधी देश के प्रधान मंत्री थे। ओशो ने कहा राजीव गाँधी युवा हैं, नॉन-पोलिटिकल हैं, पढ़े लिखे हैं और मैं उम्मीद करता हूं कि वह मेरी बात समझ पाएंगे। प्रत्येक स्कूल और यूनिवर्सिटी के लिए ओशो ने सुझाव दिया की विपस्सना जैसी एक सरल सी विधि अनिवार्य कर दी जाए।

जो विषय पढ़ा रहे हैं, सो ठीक! मैं उसमें कोई बड़े परिवर्तन करने के लिए नहीं कह रहा। एक छोटी सी चीज़ जोड़ दो। तुमसे कुछ छीन नहीं रहा, कुछ तुम्हें दे रहा हूं--एक गैर सांप्रदायिक ध्यान विधि, अपनी सांस के प्रति होश। बस इतनी सी बात से दुनिया की काया पलट हो सकती है।

सारी शिक्षा प्रणाली दूसरे आयाम में प्रवेश कर सकती है। और कुछ ज्यादा नहीं करना। जो शिक्षा चल रही है चलने दो, बस एक नया पीरियड जोड़ दो ध्यान का। बिल्कुल सहज सा ध्यान, विपस्सना जैसी विधि जिसे हर कोई कर सके। अपनी सांस के प्रति होश रखना है, इसका किसी धर्म से कोई लेना-देना भी नहीं है। अन्यथा उसी पर किसी कट्टरपंथी को आपत्ति हो जाएगी। कोई विधि हिन्दू धर्म की है, कोई विधि मुसलमानों की है। छोड़ो सब! सांस तो किसी के बाप की नहीं है, किसी धर्म के ठेकेदार की सील मोहर नहीं लगी है। कोई भी अपनी आती-जाती सांस को होशपूर्वक देख सकता है। देखते देखते देखते, आती-जाती सांस की आवाज़ सुनाई देने लगती है जो 'सोहम' से मिलती जुलती है। आती सांस पे 'सो' जाती सांस में 'हम'। एक्सेक्ट्ली 'सो' और 'हम' नहीं, सिर्फ इससे मिलती-जुलती एक आवाज़ है, गौर से उसको सुनो। और बीच-बीच में एक छोटा सा अंतराल आएगा, जब सांस न भीतर जा रही, न बाहर आ रही, उस क्षण में क्या सुनाई देता है? जब न 'सो' न 'हम', उस क्षण में भीतर का अनहद नाद सुनाई देने लगता है क्यूंकि सुनने के प्रति आप संवेदन शील हो ही गए हैं। अच्छा है तुम्हारी यह सांस न ईसाई है, न यहूदी है। न बौद्ध है, न जैन है।

न मुस्लिम है, न हिन्दू है। किसी धार्मिक संगठन या राजनैतिक पार्टी का कब्जा उस पर नहीं है। किसी व्यावसायिक समूह का कापीराइट और पेटेन्ट नहीं है। अभी तक तो नहीं है... !

एक इस छोटी सी विधि, छोटी सी तरकीब का चाहे एक पीरियड में अभ्यास करा दो चाहे हर पीरियड में 5 मिनट की विधि जोड़ दो। यहीं से शुरुआत करो। सारे बच्चे शांत हो जायेंगे। और अगर एकदम से शांत नहीं हो पाते तो 5 मिनट की कैथार्सिस, उछल-कूद, नाच-गान, हंसना-रोना, चीख-चिल्लाने की अनुमति दे दो। फिर अचानक घंटा बजे और सब एकदम शांत हो जाएं। सांस को देखें। सोहम की आवाज़ सुनें, ओंकार की ध्वनि में डूब जाएं। राम नाम में डूबकर फिर विषय की पढाई की शुरुआत करें।

कोई ज्यादा देर नहीं लगेगी। बच्चों के लिए तो बहुत आसान है। कठिनाई तो बड़ों के साथ है। स्कूल की शुरुआत अंतर्ध्वनि सुनने से हो। स्कूल का समापन अंतर्ध्वनि के सुनने से हो। बस, इतनी सी बात। घर में माता-पिता एक नियम बना लें। न सिखाएं प्रार्थना करना, न सिखाएं पूजा-पाठ करना, न सिखाएं आरती उतारना, न कोई मंत्र उच्चार। केवल इतनी छोटी सी चीज़ सिखाएं--सोने के पहले 5 मिनट ओंकार सुनते-सुनते सोना है और उठने के पहले 5 मिनट अपनी सांस को होशपूर्वक देखना है। अगर इसकी निरंतर आदत बन जाये बचपन से ही तो हम सारी दुनिया को रूपांतरित कर सकते हैं।

एक आध्यात्मिक क्रांति की जरुरत है। बहुत हो चुकी राजनैतिक क्रांतियां, आर्थिक क्रांतियां और भगवान जाने कौन-कौन सी क्रांतियां! कोई भी बदलाहट आदमी के दुःख को न मिटा पायी। अब आध्यात्मिक क्रांति की जरुरत है। विशेषकर अगर यह शिक्षा के साथ जुड़ जाये तो यह विश्वव्यापी हो सकती है।

मैं निवेदन करुँगा कि कम से कम जो ओशो प्रेमी हैं, नव-संन्यासी हैं, शिक्षा विभाग से जुड़े हुए हैं, या जो पेरेंट्स हैं, अपने छात्रों और बच्चों के लिए कम से कम हम इसकी शुरूआत कर दें। हम अपने घर से आरंभ करें, शायद कोई विशाल रूपांतरण आ सकता है।

क्या उद्देश्य की स्पष्ट समझ के बिना एक परिपूर्ण जीवन जीना संभव है?

जीवन का अंतिम उद्देश्य, परम लक्ष्य आनंद है, यह तो हर व्यक्ति को स्पष्ट है। हमारा मतभेद इस बात पर हो सकता है कि इस साध्य को किस साधन से प्राप्त किया जाए?

मन और आत्मा में अंतर क्या है?

आत्मा है चेतना का सनातन सागर
मन है उसमें उठती गिरती क्षणभंगुर लहर
मूल तत्त्व दोनों में जल ही है मगर
फर्क केवल यह है
लहर, सागर बिना नहीं हो सकती है
सागर, लहरों के बिना हो सकता है
उपरोक्त बातें बुद्धि से समझने की नहीं हैं
ध्यान में स्वयं में अनुभव करने की हैं।

दुनिया में सबसे जल्दी धर्म फेलने वाला कोनसा है?

मनुष्य प्रौढ़ हुआ है और अब बचपन के खिलौने आकर्षक नहीं रहे।

हजारों साल से चले आ रहे धर्म भावी मनुष्य के लिए निरर्थक हो चुके हैं। अतः इसकी संभावना नहीं है कि अब कोई भी धर्म जगत में फैल सकेगा। आधी से अधिक दुनिया नास्तिक हो चुकी है। यह नास्तिकता, काल्पनिक ईश्वर पर आधारित धार्मिक मान्यताओं तथा अंधविश्वासों के खिलाफ बगावत का सबूत है।

यह प्रतिक्रिया भी ज्यादा दिन नहीं चलेगी। जब क्रिया ही नहीं बचेगी तो प्रतिक्रिया कैसे रहेगी?

निश्चित ही भविष्य में एक नई प्रकार की धार्मिकता का सूर्य उदय होगा। उस का कोई विशेषण, नाम या लेबल नहीं होगा। वह जीवन की दिव्यता को संपूर्णता से जीने की कला होगी। वह किसी व्यक्तिवाची भगवान को नही, बल्कि गुणवत्तावाची भगवत्ता को प्राप्त करने की वैज्ञानिक तकनीक होगी।

उपरोक्त विषय पर ओशो की सुप्रसिद्ध किताब I teach Religiousness, not Religion का स्वयं मेरे तथा मां अमृत प्रिया जी द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद पढ़िए--

मेरी दृष्टि में तो धर्म एक गुण है, गुणवत्ता है; कोई संगठन नहीं, संप्रदाय नहीं। ये सारे धर्म जो दुनिया में हैं—और उनकी संख्या कम नहीं है, पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं—वे सब मुर्दा चट्टानें हैं। वे बहते नहीं, वे बदलते नहीं, वे समय के साथ-साथ चलते नहीं। और स्मरण रहे कि कोई चीज जो स्वयं निष्प्राण है, तुम्हारे किसी काम आने वाली नहीं। हां, अगर तुम उनसे अपनी कब्र ही निर्मित करना चाहो तो अलग बात है, शायद फिर वे पत्थर उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

धार्मिकता तुम्हारे हृदय की खिलावट है। वह तो स्वयं की आत्मा के, अपनी ही सत्ता के केंद्र बिंदु तक पहुंचने का नाम है। और जिस क्षण तुम अपने अस्तित्व के ठीक केंद्र पर पहुंच जाते हो, उस क्षण सौंदर्य का, आनंद का, शांति का और आलोक का विस्फोट होता है। तुम एक सर्वथा भिन्न व्यक्ति होने लगते हो। तुम्हारे जीवन में जो अंधेरा था वह तिरोहित हो जाता है, और जो भी गलत था वह विदा हो जाता है। फिर तुम जो भी करते हो वह परम सजगता और पूर्ण समग्रता के साथ होता है।

आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत कैसे होती है ?

1 जीवन की क्षणभंगुरता और मृत्यु के अहसास से अमृत की खोज आरंभ होती है। अधिकांश लोगों के जीवन में अध्यात्म की दिशा में मोड़ने का बिंदु यही वैराग्य होता है। भगवान बुद्ध जैसे व्यक्ति इसके उदाहरण हैं।

2 कुछ अन्य लोग जीवन के आनंद में डूबकर, और अधिक शाश्वत परमानंद की तलाश में लगते हैं, तब वे अध्यात्म में उत्सुक होते हैं। भगवान शिव जैसे व्यक्ति इसके उदाहरण हैं।

कोई कैसे जाने कि वह आध्यात्म के पथ पर अग्रसर है?

यदि किसी व्यक्ति के जीवन में शांति, आनंद, प्रीति और संतुष्टि का एहसास प्रगाढ़ होता जा रहा है, ओंकार नाद सुनाई देने लगा है तो वह भली भांति जाने कि वह आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ रहा है।

ईश्वर का अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है और क्या इसका विज्ञानिक प्रमाण है?

आपका, मेरा, सभी का, समस्त जीवन के रूपों का होना प्रमाण है, परमात्मा के होने का।

परमात्मा यानी आत्मा का परम रूप। हम सभी उसके सबूत हैं। जरूरत केवल इतनी है कि हम स्वयं के भीतर ध्यान में दुबे और अपने सच्चे स्वरूप को पहचाने। पूरे भारत में भगवान को मानने वाले कितने लोग होंगे क्या उन सभी में से किसी ने भगवान को पाया है?

परमात्मा को मनाना जरूरी नहीं, जानना जरूरी है। परमात्मा बाहर नहीं, स्वयं के भीतर विराजमान है। जिस व्यक्ति ने ध्यान किया, अपने भीतर डूबा, उसे भगवान मिल गया।

आंतरिक प्रकाश के रहस्य

मार्ग में अवरोध न आने पर क्या प्रकाश किरण कभी खत्म होगी?

जी नहीं, कभी नहीं।

प्रकाश एक प्रकार का विद्युत चुम्बकीय विकिरण है जो लगभग तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड की निरंतर गति से अंतरिक्ष में यात्रा करता है। ध्वनि तरंग को गतिमान होने के लिए हवा की जरूरत होती है किंतु प्रकाश किरण निर्वात यानी शून्य गगन में यात्रा करने में सक्षम है। इसका अर्थ है कि इसे यात्रा करने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है।

प्रकाश समय के साथ फीका नहीं पड़ता है, लेकिन इसे पदार्थ द्वारा अवशोषित, परावर्तित या अपवर्तित किया जा सकता है, जिससे इसकी तीव्रता कम हो सकती है अथवा इसकी यात्रा की दिशा बदल सकती है। उदाहरण के लिए, पृथ्वी से अरबों प्रकाश वर्ष दूर एक तारे का प्रकाश अंतर-तारकीय अंतरिक्ष में धूल और गैस से कमजोर पड़ सकता है। सदैव सीधी रेखा में चलने वाला प्रकाश ग्रहों और आकाशगंगाओं जैसे आकाशीय पिंडों के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों से प्रभावित होकर मुड़ भी सकता है। ब्लैक होल के निकट पहुंचकर प्रकाश सदा-सदा के लिए उसमें समा जाता है।

हालाँकि, भले ही प्रकाश अवशोषित हो या बिखर जाए, वह पूर्णतः खत्म कभी नहीं होता है। वह ऊर्जा के अन्य रूपों, जैसे गर्मी या गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। प्रकाश को इस अर्थ में अनन्त कहा जा सकता है कि इसे कभी भी पूरी तरह से नष्ट नहीं किया जा सकता है। लेकिन यह रूप बदल सकता है और अन्य प्रकार की ऊर्जा में बदल सकता है।

जो बात प्रकाश के बारे में सच है वही बात समस्त प्रकार की ऊर्जा तरंगों के बारे में भी सच है। कोई भी शक्ति कभी समाप्त नहीं होती, केवल रूपांतरित होती है।

ठीक यही बात ठोस, तरल या वायुवीय पदार्थों के बारे में भी सत्य है। आइंस्टीन के सुप्रसिद्ध फामूर्ला (e=mcc)से ज्ञात होता है कि शक्ति पदार्थ में अथवा पदार्थ शक्ति में बदल सकता है लेकिन इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता।

जो है, वह अनंत है। अध्यात्मविद इसी सचाई को आत्मा के बारे में बताते आए हैं। सोचिए--जब पदार्थ जैसी छुद्र वस्तु भी अविनाशी है तो भला चेतना कैसे विनष्ट होगी!

एक और विचित्र रहस्य है प्रकाश से संबंधित--सबको दृश्य बनाने वाला प्रकाश स्वयं अदृश्य है। इसलिए असंख्य तारों के अंतहीन प्रकाश से ओतप्रोत होने के बावजूद भी अंतरिक्ष महा-अंधकारमय है। यद्वपि अंतरिक्ष यात्री को सूरज दिखाई देता है किंतु उसके आसपास घना अंधेरा ही नजर आता है।

क्या प्रकाश-कण सिर्फ प्रकाश किरणों में ही होते हैं अथवा अन्य ऊर्जा तरंगों में भी विद्यमान रहते हैं? क्या चेतना भी एक प्रकार की तरंग कही जा सकती है?

आपके सवाल के दो जवाब हैं--सैद्धांतिक रूप से हां, व्यावहारिक रूप से नहीं।

इसका कारण समझिए। संपूर्ण इलेक्ट्रोमैग्नेटिक इंद्रधनुष में निम्नतम से उच्चतम आवृत्ति (अर्थात् सबसे लंबी से छोटी तरंग दैर्ध्य) वाली तरंगें आती हैं। शून्य आकाश में तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से चलने वाली

रेडियो तरंगें (जैसे, वाणिज्यिक रेडियो और टेलीविजन, माइक्रोवेव, रडार), अवरक्त विकिरण, प्रकाश, पराबैंगनी विकिरण, एक्स-रे, और गामा किरणें इत्यादि विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं।

क्वांटम सिद्धांत के मुताबिक जब विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र को परिमाणित किया जाता है, तो कमजोर क्षेत्र में इसकी ऊर्जा 'क्वांटा' की इकाइयों में आती है। ऊर्जा की इन मात्रात्मक इकाइयों को 'फोटॉन' कहा जाता है। सबसे लंबी रेडियो तरंगों से लेकर सबसे छोटी गामा किरणों तक, सभी विद्युत चुम्बकीय तरंगें किसी भी आवृत्ति पर इस तरह से व्यवहार करती हैं।

लेकिन यह परिमाणीकरण कम तरंग दैर्ध्य (यानी उच्च आवृत्ति) पर अधिक स्पष्ट होता है, जिस पर क्वांटा अधिक ऊर्जावान होता है। रेडियो तंरगों में फोटॉन आसानी से पता लगाने योग्य नहीं रहते, क्योंकि तरंग दैर्ध्य अधिक (यानी निम्न आवृत्ति) होती है। प्रकाश की परिमाणित दशा का ज्ञान अनेक प्रकार से होता है, विशेषकर जब प्रकाश, ऊर्जा की एक सतत धारा के रूप में नहीं बल्कि अ-सतत इकाइयों में आता है।

कम आवृत्ति वाली बड़ी रेडियो तरंगों के बारे में भी यही सच है, लेकिन इकाइयाँ इतनी छोटी हैं, कि पता लगाई गई तरंग बिना किसी स्पष्ट परिमाण के निरंतरता में गतिमान प्रतीत होती है। अ-सतत इकाइयों में उसकी वास्तविकता का ज्ञान प्रायोगिक रूप से नहीं हो पाता। इसी वजह से प्रायः केवल प्रकाश-कण को ही 'फोटॉन' की संज्ञा दी जाती है। गामा किरणों के 'फोटॉन' उच्चतम ऊर्जा वाले होते हैं क्योंकि उनकी तरंग दैर्ध्य सबसे कम यानी आवृत्ति सबसे ज्यादा होती है।

क्या हम गामा तरंगों से भी अधिक आवृत्ति की कल्पना कर सकते हैं? वह करीब-करीब ठोसपन के निकट होती जाएगी। पदार्थ का लोक आरंभ हो जाएगा। क्या हम रेडियो तरंगों से भी कम आवृत्ति की कल्पना कर सकते हैं? वह करीब-करीब शून्यता के निकट होती जाएगी। चेतना का लोक आरंभ हो जाएगा।

आपने पूछा है कि क्या चेतना भी एक प्रकार की तरंग है?

जी हां, चाहें तो ऐसा कह सकते हैं कि चेतना ऐसी तरंग है, जो निस्तरंग है। अर्थात् जिसकी आवृत्ति शून्य है, और तरंग दैर्ध्य अनंत यानी पूर्ण है। भगवान बुद्ध ने जिसे शून्य कहा, निर्वाण पुकारा, आदि शंकराचार्य ने जिसे पूर्ण कहा, परमात्मा पुकारा। भगवान महावीर ने जिसे 'समय'की संज्ञा दी। आधुनिक भौतिकी ने समय को आकाश का चौथा आयाम सिद्ध कर दिया। बुद्ध का शून्याकाश और महावीर का समय, दो पृथक या विपरीत बातें नहीं हैं।

आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर परिकल्पनात्मक है। मुझे आशा है कि आने वाले समय में पश्चिमी विज्ञान, पूर्वीय मनीषियों की अवधारणाओं को अवश्य स्वीकारेगा। विगत ढाई हजार वर्षों से जैन मुनि उपहास के पात्र थे, क्योंकि वे पानी छानकर पीते और मुंह पर पट्टी बांधते थे, ताकि वायु और जल में रहने वाले जीव-जंतुओं के संग हिंसा न हो जाए। कोरोना महामारी ने सबके नाक-मुंह पर पट्टी बंधवा दी। महावीर ने बिना किसी सूक्ष्मदर्शी के बता दिया था सूक्ष्म अदृश्य प्राणियों के बारे में। यहां तक कि पेड़-पौधों में जीवन है, यह भी बता दिया था।

अंगुलिमाल की कहानी

यह कहानी एक गहरी प्रतीकात्मक कथा है, जो हमें जीवन के परिवर्तन और बोध के गहरे रहस्यों को सिखाती है। यह कहानी बुद्ध के जीवन से जुड़ी हुई है, और ओशो ने इसे कई संदर्भों में अपने प्रवचनों में उल्लेखित किया है।

अंगुलिमाल एक कुख्यात डाकू था, जिसने सौ लोगों को मारने की कसम खाई थी और वह उनकी अंगुलियां काटकर अपनी माला में पिरोता था। उसके नाम "अंगुलिमाल" का मतलब भी वही है—अंगुलियों की माला पहनने वाला। यह व्यक्ति हिंसा और अज्ञानता का प्रतीक है।

एक दिन जब वह बुद्ध के मार्ग में आता है, तो वह बुद्ध को मारने का विचार करता है। लेकिन बुद्ध की शांति, उनकी करुणा और उनके बोध ने अंगुलिमाल के भीतर कुछ बदल दिया। वह बुद्ध से प्रभावित होता है और उनका शिष्य बन जाता है।

इस कहानी में ओशो हमें यह सिखाते हैं कि जीवन में कभी भी परिवर्तन संभव है, चाहे व्यक्ति कितना भी गहरे अज्ञान में क्यों न हो। यहां तक कि एक हत्यारा भी, अगर सही दिशा में बोध पाता है, तो वह पूरी तरह से बदल सकता है।

ओशो का दृष्टिकोण इस कहानी पर:

• परिवर्तन एक क्षण में संभव है: चाहे कोई व्यक्ति कितना भी हिंसक या नकारात्मक क्यों न हो, एक क्षण की प्रबुद्धता उसे पूरी तरह से बदल सकती है।

• बोध, समय या तपस्या का परिणाम नहीं है, यह जागरण का परिणाम है: अंगुलिमाल को बुद्ध की उपस्थिति में अचानक यह अनुभव होता है। उसके भीतर कुछ टूटता है और वह बोध की ओर चल पड़ता है।

• सत्य से सामना: जब व्यक्ति सत्य से, अपने वास्तविक स्वरूप से सामना करता है, तो उसकी पुरानी धारणाएँ, उसका अहंकार, उसकी हिंसा गिर जाती हैं। जैसे अंगुलिमाल की क्रूरता बुद्ध की शांति के सामने न टिक सकी।

यह कहानी हमें यह भी बताती है कि हम कभी भी किसी व्यक्ति को उसके अतीत के आधार पर पूरी तरह से आंक नहीं सकते। जीवन के किसी भी क्षण में व्यक्ति के भीतर जागरण का बीज अंकुरित हो सकता है। बुद्ध जैसे प्रबुद्ध आत्माओं का कार्य यही है—हमें अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कराना, जिससे कि हम अपने भीतर छिपी करुणा और प्रेम को खोज सकें।

इस कहानी को ओशो ने कई बार उपयोग किया है यह बताने के लिए कि जीवन में बोध की कोई निश्चित प्रक्रिया या समय सीमा नहीं होती। एक क्षण का मौन, एक सच्चे गुरु की उपस्थिति, और व्यक्ति का संपूर्ण जीवन बदल सकता है।

यदि तुम्हें जीवन में कभी यह अनुभव हो कि तुम खो चुके हो, तो यह कहानी हमें याद दिलाती है कि हमेशा वापसी का मार्ग खुला होता है।

विस्तार से पढ़ने या सुनने के लिए लिंक-

गीता दर्शन, अध्याय 6, प्रवचन-18 https://oshoworld.com/geeta-darshan-vol-6-18/

गीता दर्शन, अध्याय 10, प्रवचन-13 https://oshoworld.com/geeta-darshan-vol-10-13/

अजहूं चेत गंवार-12 https://oshoworld.com/ajhun-chet-ganwar-12/

राम दुवारे जो मरै-4 https://oshoworld.com/ram-duware-jo-mare-04/

कहै कबीर दिवाना-5 https://oshoworld.com/kahe-kabir-diwana-05/

मा अमृत प्रिया जी, आपकी अमृत वाणी में एक गीत हो, जिसमें अध्यात्म का, ओशो का संदेश भी हो।

जो हमेशा से था कायम वो सदा रह जायेगा
सब मिटेगा जग में बाक़ी बस खुदा रह जायेगा
तू धरा पे कुछ न लाया ना धरा से ले जाएगा
इस धरा का इस धरा पर सब धरा रह जायेगा
जो भी मिट सकता है उसका मिटना ही तो मौत है
जो कभी मिटता नही बस वो बचा रह जायेगा
तन बना था तन मिटेगा मन बना था मन मिटेगा
ये निरंकार साक्षी अमृत है सदा रह जायेगा
कर नहीं सकतीं हिफाज़त ये जहाँ की दौलतें
आसरा ले रब का बस ये आसरा रह जायेगा
लुत्फ़ जिसने रूह के गुलशन का जाना ही नहीं
उसका जीवन उम्र भर की इक सजा रह जायेगा
सदगुरु की नाव में आ बैठ, दरिया पार कर
वरना तूफ़ां में किनारे पर खड़ा रह जायेगा

जितनी संपन्नता, उतनी ही अशांति

आज तक कोई आदमी गरीबी मिटाने से शांत नहीं हुआ है। गरीबी मिट जाती है, शांति तो नहीं आती, अशांति और बढ़ जाती है। क्योंकि पहली दफा यह पता चलता है कि धन के मिलने से अशांति के टूटने का कोई संबंध नहीं है। तब एक आशा भी टूट जाती है कि धन के मिलने से मैं शांत हो जाऊंगा।

इसीलिए जितना समाज धनिक होता चला जाता है, उतना ही समाज ज्यादा अशांत होता चला जाता है। आज अमेरिका से ज्यादा अशांत शायद दुनिया में कोई दूसरा समाज नहीं है। और अमेरिका के पास जैसी समृद्धि है वैसी मनुष्य के इतिहास में कभी किसी समाज, किसी देश के पास नहीं थी। बड़ी हैरानी होती है कि इतना सब तुम्हारे पास है, फिर तुम अशांत क्यों हो? हम अगर अशांत हैं तो समझ में आती है बात कि हमारे पास कुछ भी नहीं है।

लेकिन कुछ होने और न होने से शांति और अशांति का कोई संबंध नहीं है।

मनुष्य के जीवन में शरीर है, मन है, आत्मा है। शरीर की जरूरतें हैं। अगर वे पूरी न हों, तो जीवन कष्टपूर्ण हो जाता है। शरीर की जरूरतें हैं--रोटी है, कपड़ा है, मकान है--अगर शरीर को न मिलें, तो जीवन एक कष्ट की यात्रा बन जाएगा। शरीर पूरे वक्त खबर देगा कि मैं भूखा हूं, मैं नंगा हूं, दवा नहीं है, प्यास लगी है, पानी नहीं है, रोटी नहीं है। शरीर पूरे वक्त अभाव की खबर देगा। और अभाव की खबर जीवन को कष्ट से भर देती है। खयाल रहे: अशांति से नहीं, कष्ट से! यह हो सकता है, एक आदमी कष्ट में हो और अशांत न हो। और यह भी हो सकता है, एक आदमी बिलकुल कष्ट में न हो और अशांत हो। बल्कि अक्सर यही होता है। जो आदमी कष्ट में होता है उसे अशांति का पता ही नहीं चलता। कष्ट ही इतना उलझा लेता है कि अशांति पर ध्यान देने की सुविधा और फुरसत नहीं मिलती। जब सब कष्ट समाप्त हो जाते हैं, तब पहली दफा ध्यान आता है कि अशांति भी भीतर है।

गरीब आदमी कष्ट में होता है। समृद्ध आदमी अशांति में होता है।

शरीर में कष्ट होते हैं, और अगर शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं तो शरीर में कष्ट का अभाव हो जाता है। लेकिन शरीर के तल पर सुख का कभी कोई अनुभव नहीं होता। यह भी समझ लेना जरूरी है। शरीर में कष्ट हो सकते हैं, सुख शरीर में कभी नहीं होता। हां, कष्ट का अभाव हो जाए, कष्ट न हों, तो उसी को हम सुख समझ लेते हैं।

अगर पैर में कांटा गड़ा है तो तकलीफ होती है और पैर में कांटा न गड़ा हो तो कोई आनंद नहीं होता। कि हम जाकर मोहल्ले में खबर करें कि आज मेरे पैर में कांटा नहीं गड़ा, मैं बहुत आनंद में हूं। कि आज मेरे सिर में दर्द नहीं हो रहा इसलिए आज मैं बड़ा सुखी हूं। सिर में दर्द होता है तो हम कष्ट में होते हैं, लेकिन सिर में दर्द न हो तो हम सुख में नहीं होते। यह शरीर के साथ समझ लेना बहुत उपयोगी है कि शरीर के तल पर सुख जैसी कोई चीज कभी होती ही नहीं; दुख होता है और दुख का अभाव होता है। दुख के अभाव को ही लोग सुख समझ लेते हैं। शरीर दुख दे सकता है, दुख नहीं दे सकता है; लेकिन सुख कभी भी नहीं दे सकता है।

इसलिए जो शरीर के तल पर ही जीते हैं उन्हें सुख का कभी कोई पता नहीं चलता। दुख का पता चलता है, दुख से बचने का पता चलता है। भूख लगी है तो कष्ट मालूम होता है, भूख मिट गई तो कष्ट मिट गया। बस शरीर यहीं ठहर जाता है।

शरीर के बाद, शरीर के भीतर मन है। मन की हालत उलटी है। मन की भी जरूरतें हैं, मन की भी मांगें हैं, मन की भी भूख और प्यास है। साहित्य है, कला है, दर्शन है, संगीत है--वे सब मन की आकांक्षाएं हैं, मन की भूख और प्यास हैं। वह मन का भोजन है। लेकिन अगर किसी आदमी ने कालिदास का काव्य न पढ़ा हो, तो इसके कारण कोई कष्ट नहीं होता। या किसी आदमी ने अगर किसी बड़े कलाकार का सितार न सुना हो, तो इस कारण कोई कष्ट नहीं होता। नहीं तो आदमी एकदम मर जाए कष्ट से। क्योंकि इतनी चीजें हैं मन की दुनिया में जिनका हमें कोई पता ही नहीं।

मन की दुनिया में, जिस चीज का आपको पता नहीं है, अनुभव नहीं है, उसका कोई कष्ट नहीं होता; लेकिन पता चले तो सुख जरूर होता है। अगर आपको सितार सुनने मिल जाए तो सुख होता है। नहीं सुना था तब तक कोई कष्ट नहीं था। अगर आप काव्य नहीं समझते हैं, नहीं सुना है, नहीं समझा है, तो कोई कष्ट नहीं है। लेकिन सुनने मिल जाए तो सुख जरूर होता है।

मन के तल पर सुख है। एक बार सुख का अनुभव शुरू हो जाए और फिर सुख न मिले, तो सुख का अभाव मालूम पड़ता है; लोग उसी को मन का कष्ट समझ लेते हैं। शरीर के तल पर सुख नहीं होता, सिर्फ दुख का अभाव होता है। मन के तल पर सुख होता है और सुख का अभाव होता है, कष्ट जैसी कोई चीज नहीं होती।

लेकिन मन की एक और खूबी है। मन के तल पर जो सुख होते हैं, वे क्षण भर के लिए होते हैं, उससे ज्यादा कभी नहीं हो पाते। क्योंकि मन को जो सुख एक बार मिला, उसकी पुनरुक्ति से उसे सुख नहीं मिलता।

अगर आज आपने किसी वीणावादक से वीणा सुनी और कल फिर वही वीणा सुनाए, तो आज जितना सुख हुआ था उतना कल नहीं होगा। और परसों फिर सुनाए, तो और भी कम होगा। और अगर दस-पांच दिन सुननी पड़े, तो जिससे पहले दिन सुख हुआ था उसी से दुख की प्रतीति शुरू हो जाएगी। और अगर दो-चार महीने सुनना पड़े, तो आप अपना सिर फोड़ लेंगे और भागना चाहेंगे कि अब मैं इसे नहीं सुनना चाहता हूं।

-ओशो, तृषा गई एक बूंद से

असली धनवान कौन?

संत कबीर दास बाहर से निर्धन मगर आंतरिक रूप से महाधनी
दुनिया को हिला देने वाले हिटलर से आत्महत्या करते ही बनी
सम्पत्ति का बड़ा मूल्य है माना, किंतु यदि आत्मा को न जाना
तो नहीं मिलेगा जीवन का सार, जब तक न होगा प्रभु से प्यार।

सम्पत्ति का बड़ा मूल्य है माना
किंतु यदि आत्मा को न जाना
तो नहीं मिलेगा जीवन का सार
जब तक न होगा प्रभु से प्यार।
जिंदगी में पैसे का महत्व सबको ज्ञात है,
यह विनिमय का साधन, सुख का साथ है।
पर कुछ हैं जो इससे परे खड़े,
अनमोल रत्न जो धन से कभी ना जुड़े।
आनंद, संतोष, शांति, और मुक्ति,
धन के तराजू में ना तोले जाते।
ये वो धरोहर हैं, अमूल्य खजाना,
जिन्हें पाने को चाहिए भीतर का ठिकाना।
आकांक्षा धन, शक्ति, और मान तक सीमित,
अस्थायी सुख, पलभर का सीमित।
महत्त्वाकांक्षा का अर्थ है विराट होना,
परम से जुड़कर आत्मा को पाना।
भीतर की खुशी का दीप जलाना,
संसार के तम में प्रकाश फैलाना।
धन भी हो, मगर सेवा का भाव,
जीवन को बना दे सुखद और अभिराम।
जो सच्चा मूल्यवान है, वह अनमोल,
शांति का सरोवर, आत्मा का कंवल।
बाहर की दौलत की सीमा है निश्चित,
भीतर की दौलत का अंत नहीं है।
तो चलो, समझें भेद आकांक्षा और महत्त्वाकांक्षा का,
साधारण से निकल, खोजें विराट का।
आओ, भीतर के खजाने को पहचानें,
महत्त्वाकांक्षा के पंखों से ऊँचाई पर जानें।

संसार में रहें, मगर बंधन से मुक्त,
जीवन को करें आनंद और शांति से युक्त।

हमारी आंतरिक खुशियाँ बाहर की दुनिया से मिली प्रसन्नता से बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं। बाहर का भी महत्व है, किंतु भीतर से ज्यादा नहीं। इनमें भेद समझने के लिए आइए सबसे पहले जानते हैं: "आकांक्षा" और "महत्वाकांक्षा" के बीच अंतर—

आकांक्षा का अर्थ: साधारण, सांसारिक, और वस्तुगत (objective) चीज़ों को पाने की इच्छा। धन, शक्ति, और प्रतिष्ठा तक सीमित रहती है, जो अंततः अस्थायी है। प्राकृतिक प्रवृत्ति: यह मानव जीवन की सामान्य और प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने से जुड़ी होती है, जैसे धन, सुख-सुविधा, या सामाजिक स्वीकृति, अच्छा घर खरीदने की आकांक्षा, उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा।

महत्त्वाकांक्षा का अर्थ: "महत" यानी महान, विराट, और सर्वोच्च। "आकांक्षा" यानी चाहत या प्यास। इसलिए महत्त्वाकांक्षा का असली अर्थ वही है, जो हमें असीम, विराटतम, और परमात्मा से जोड़ सके। महत्त्वपूर्ण और असाधारण लक्ष्यों को पाने की उच्चतर और आत्मगत (subjective) आकांक्षा। यह व्यक्तित्व के विकास, आत्मा की संतुष्टि, और समाज या मानवता के लिए कुछ बड़ा करने की प्रेरणा से संचालित होती है। आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षा में आत्मा का मिलन परमात्मा से होता है, जो शाश्वत और सत्य है।

मुख्य अंतर: आकांक्षा: भौतिक और बाहरी (external), सीमित और छुद्र, व्यक्तिगत सुख और सुविधा। महत्वाकांक्षा: आंतरिक और मानसिक/आध्यात्मिक (internal/mental), विराट और व्यापक। समाज, राष्ट्र या मानवता के लिए योगदान।

सरल उदाहरण: अगर कोई व्यक्ति सिर्फ अपने लिए धन और आरामदायक जीवन चाहता है, तो यह आकांक्षा है। वहीं, अगर वह व्यक्ति दुनिया में गरीबी मिटाने या मानवता की भलाई के लिए कुछ बड़ा करना चाहता है, तो यह महत्वाकांक्षा है। यह अंतर व्यक्तित्व और दृष्टिकोण को समझने का भी एक तरीका है। महत्त्वाकांक्षा का सर्वोच्च और वास्तविक अर्थ तभी पूर्ण होता है, जब यह परमात्मा या परम सत्य को पाने की चाहत बन जाए।

प्रभु की प्यास: परमात्मा ही महत्तम हैं: क्योंकि वे सब कुछ के मूल हैं। जो परमात्मा की खोज करता है, वही सबसे ऊँची महत्त्वाकांक्षा रखता है। सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठकर, आत्मा की प्यास को बुझाने के लिए परमात्मा से जुड़ना। यह यात्रा स्वार्थ से परमार्थ की ओर होती है। विराटतम वही है जो सीमाओं से परे है—अनंत और शाश्वत। इसे पाने की अभीप्सा (चाहत) ही असली महत्त्वाकांक्षा है। यह चाहत भीतर की गहराई से आती है, जहां आत्मा अपने स्रोत (परमात्मा) से मिलने को व्याकुल रहती है। सच्ची महत्त्वाकांक्षा वही है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का माध्यम बने। यह महत्त्वाकांक्षा न केवल व्यक्ति को स्वयं के सत्य तक ले जाती है, बल्कि मानवता के लिए भी एक मार्गदर्शक बनती है। "महत्तम को पाने की प्यास ही सच्ची महत्वाकांक्षा है।"

परमात्मा ही इस सृष्टि के मूल हैं, जहां से सब कुछ प्रकट होता है और जहां सब कुछ विलीन हो जाता है। उनकी खोज करना सबसे ऊँची और पवित्र महत्त्वाकांक्षा है। यह सांसारिक वस्तुओं, जैसे धन, शक्ति, और प्रतिष्ठा से ऊपर उठने की यात्रा है। यह यात्रा आत्मा की प्यास को बुझाने, भीतर के सत्य को जानने, और अनंत शांति को अनुभव करने की ओर ले जाती है।

परमात्मा से जुड़ने का अर्थ है स्वार्थ से परमार्थ की ओर बढ़ना—अपने छोटे स्व से मुक्त होकर विराटतम के साथ एकाकार होना। सांसारिक आकांक्षाएँ सीमित और अस्थायी होती हैं, जबकि परमात्मा अनंत और शाश्वत हैं। उनका अनुभव उन सीमाओं को तोड़ देता है, जो हमें बाहरी जगत में बांधती हैं।

महत्त्वाकांक्षा तब असली बनती है, जब वह हमें अपने भीतर की गहराई में ले जाती है और हमें उस विराट सत्य से जोड़ती है, जो शाश्वत और असीम है। यह चाहत न केवल आत्मा की शांति और आनंद का स्रोत है, बल्कि यह हमारे जीवन को अर्थ और दिशा देती है। विराटतम वही है जो सीमाओं से परे है—परमात्मा, जो हर आत्मा का अंतिम गंतव्य है।

विज्ञान की अग्नि में विश्वास-शून्य धर्म का जन्म

मैं स्मरण करता हूं मनुष्य के इतिहास की सबसे पहली घटना को। कहा जाता है कि जब आदम और ईव स्वर्ग के राज्य से बाहर निकाले गए तो आदम ने द्वार से निकलते हुए जो सबसे पहले शब्द ईव से कहे थे, वे थे- 'हम एक बहुत बड़ी क्रांत से गुजर रहे हैं।' पता नहीं पहले आदमी ने कभी यह कहा था या नहीं, लेकिन न भी कहा हो तो भी उसके मन में तो ये भाव रहे ही होंगे। एक बिल्कुल ही अज्ञात जगत में वह प्रवेश कर रहा था। जो परिचित था वह छूट रहा था, और जो बिल्कुल ही परिचित नहीं था, उस अनजाने और अजनबी जगत में उसे जाना पड़ रहा था। अज्ञात सागर में नौका खोलते समय ऐसा लगना स्वाभाविक ही है। ये भाव प्रत्येक युग में आदमी को अनुभव होते रहे हैं, क्योंकि जीवन का विकास तो निरंतर अज्ञात से अज्ञात में ही है।

जो ज्ञात हो जाता है उसे छोड़ना पड़ता है, ताकि जो अज्ञात है वह भी ज्ञात हो सके। ज्ञात की ज्योति, ज्ञात से अज्ञात में चरण रखने के साहस से ही प्रज्वलित और परिवर्तित होती है। जो ज्ञात पर रुक जाता है, वह अज्ञात पर ही रुक जाता है। ज्ञात पर रुक जाना ज्ञात की दिशा नहीं है। जब तक मनुष्य पूर्ण नहीं हो जाता है तब तक निरंतर ही पुराने और परिचित को बिदा देनी होगी और नए तथा अपरिचित का स्वागत करना होगा। नए सूर्य के उदय के लिए रोज ही परिचित पुराने सूर्य को बिदा दे देनी होती है। फिर संक्रमण की बेला में रात्रि के अंधकार से भी गुजरना होता है। विकास की यह प्रक्रिया निश्चित ही बहुत कष्टप्रद है। लेकिन बिना प्रसव-पीड़ा के कोई जन्म भी तो नहीं होता है।

हम भी इस प्रसव-पीड़ा से गुजर रहे हैं। हम भी एक अभूतपूर्व क्रांति से गुजर रहे हैं। शायद मानवीय चेतना में इतनी आमूल क्रांति का कोई समय भी नहीं आया था। थोड़े-बहुत अर्थों में तो परिवर्तन सदैव होता रहता है, क्योंकि परिवर्तन के अभाव में कोई जीवन ही नहीं है। लेकिन परिवर्तन की सतत प्रक्रिया कभी-कभी वाष्पीकरण के उत्ताप-बिंदु पर भी पहुंच जाती है और तब आमूल क्रांति घटित हो जाती है। वह बीसवीं सदी एक ऐसे ही उत्ताप बिंदु पर मनुष्य को ले आई है। इस क्रांति से उसकी चेतना एक बिल्कुल ही नए आयाम में गतिमय होने को तैयार हो रही है।

हमारी यात्रा अब एक बहुत ही अज्ञात मार्ग पर होनी संभावित है। जो भी ज्ञात है, वह छूट रहा है और जो भी परिचित और जाना-माना है, वह विलीन होता जाता है। सदा से चले आते जीवन-मूल्य खंडित हो रहे हैं और परंपरा की कड़ियां टूट रही हैं। निश्चित ही यह किसी बहुत बड़ी छलांग की पूर्व तैयारी है। अतीत की भूमि से उखड़ रही हमारी जड़ें किसी नई भूमि में स्थानांतरित होना चाहती हैं और परंपराओं के गिरते हुए पुराने भवन किन्हीं नये भवनों के लिए स्थान खाली कर रहे हैं

इन सबमें मैं मनुष्य को जीवन के बिल्कुल ही अज्ञात रहस्य-द्वारों पर चोट करते देख रहा हूं। परिचित और चक्रीय गति से बहुत चले हुए मार्ग उजाड़ हो गए हैं और भविष्य के अत्यंत अपरिचित और अंधकारपूर्ण मार्गों को प्रकाशित करने की चेष्टा चल रही है। यह बहुत शुभ है, और मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं। क्योंकि यह सब चेष्टा इस बात का सुसमाचार है कि मनुष्य की चेतना कोई नया आरोहण करना चाहती है। हम विकास के किसी सोपान के निकट हैं। मनुष्य अब वही नहीं रहेगा जो वह था। कुछ होने को है, कुछ नया होने को है।

जिनके पास दूर देखनेवाली आंखें हैं वे देख सकते हैं, और जिनके पास दूर को सुननेवाले कान हैं वे सुन सकते हैं। बीज जब टूटता है और अपने अंकुर को सूर्य की तलाश में भूमि के ऊपर भेजता है तो जैसी उथल-पुथल उसके भीतर होती है, वैसी ही उथल-पुथल का सामना हम भी कर रहे हैं। इसमें घबराने और चिंतित होने का कोई भी कारण नहीं है। यह अराजकता संक्रमणकालीन है।

इसके भय से पीछे लौटने की वृत्ति आत्मघाती है। फिर पीछे लौटना तो कभी संभव नहीं है। जीवन आगे की ओर ही जाता है। जैसे सुबह होने के पूर्व अंधकार और भी घना हो जाता है, ऐसे ही नए के जन्म के पूर्व अराजकता की पीड़ा भी बहुत सघन हो जाती है।

हमारी चेतना में हो रही इस सारी उथल-पुथल, अराजकता, क्रांति और नए के जन्म की संभावना का केंद्र और आधार विज्ञान है। विज्ञान के आलोक ने हमारी आंखें खोल दी हैं और हमारी नींद तोड़ दी है। उसने ही हमसे हमारे बहुत-से दीर्घ पोषित स्वप्न छीन लिए हैं और बहुत से वस्त्र भी और हमारे स्वयं के समक्ष ही नग्न खड़ा कर दिया है, जैसे किसी ने हमें झकझोर कर अर्धरात्रि में जगा दिया हो। ऐसे ही विज्ञान ने हमें जगा दिया है।

विज्ञान ने मनुष्य का बचपन छीन लिया है और उसे प्रौढ़ता दे दी है। उसकी ही खोजों और निष्पत्तियों ने हमें हमारी परंपरागत और रूढ़िबद्ध चिंतना से मुक्त कर दिया है, जो वस्तुतः चिंतना नहीं, मात्र चिंतन का मिथ्या आभास ही थी; क्योंकि जो विचार स्वतंत्र न हो वह विचार ही नहीं होता है। सदियों-सदियों से जो अंधविश्वास मकड़ी के जालों की भांति हमें घेरे हुए थे, उसने उन्हें तोड़ दिया है, और यह संभव हो सका है कि मनुष्य का मन विश्वास की कारा से मुक्त होकर विवेक की ओर अग्रसर हो सके।

कल तक के इतिहास को हम विश्वास-काल कह सकते हैं। आनेवाला समय विवेक का होगा। विश्वास से विवेक में आरोहण ही विज्ञान की सबसे बड़ी देन है। यह विश्वास का परिवर्तन-मात्र नहीं है, वरन विश्वास से मुक्ति है। श्रद्धाएं तो सदा बदलती रहती हैं। पुराने विश्वासों की जगह नए विश्वास जन्म लेते रहे हैं। लेकिन आज जो विज्ञान के द्वारा संभव हुआ है, वह बहुत अभिनव है। पुराने विश्वास चले गए हैं और नयों का आगमन नहीं हुआ है। पुरानी श्रद्धाएं मर गई हैं, और नई श्रद्धाओं का आविर्भाव नहीं हुआ है। यह रिक्तता अभूतपूर्व है।

श्रद्धा बदली नहीं, शून्य हो गई है। श्रद्धा-शून्य तथा विश्वास-शून्य चेतना का जन्म हुआ है। विश्वास बदल जाएं तो कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है। एक की जगह दूसरे आ जाते हैं। अर्थी को ले जाते समय जैसे लोग कंधा बदल लेते हैं, वैसा ही यह परिवर्तन है। विश्वास की वृत्ति तो बनी ही रहती है। जबकि विश्वास की विषय-वस्तु नहीं, विश्वास की वृत्ति ही असली बात है। विज्ञान ने विश्वास को नहीं बदला है, उसने तो उसकी वृत्ति को ही तोड़ डाला है।

विश्वास-वृत्ति ही अंधानुगमन में ले जाती है और वही पक्षपातों के चित्त को बांधती है। जो चित्त पक्षपातों से बंधा हो, वह सत्य को नहीं जान सकता है। जानने के लिए निषपक्ष होना आवश्यक है।

जो कुछ भी मान लेता है, वह सत्य को जानने से वंचित हो जाता है। वह मानना ही उसका बंधन बन जाता है, जबकि सत्य के साक्षात के लिए चेतना का मुक्त होना आवश्यक है। विश्वास नहीं, विवेक ही सत्य के द्वार तक ले जाने में समर्थ है और विवेक के जागरण में विश्वास से बड़ी और कोई बाधा नहीं है।

यह स्मरणीय है कि जो व्यक्ति विश्वास कर लेता है, वह कभी खोजता नहीं। खोज तो संदेह से होती है, श्रद्धा से नहीं। समस्त ज्ञान का जन्म संदेह से होता है। संदेह का अर्थ अविश्वास नहीं है। अविश्वास तो विश्वास का ही निषेधात्मक रूप है। खोज न तो विश्वास से होती है, न अंधविश्वास से। उसके लिए तो संदेह की स्वतंत्र चित्त-दशा चाहिए। संदेह केवल सत्य की खोज का पथ प्रशस्त करता है।

-ओशो , क्रांति सूत्र-3

जीवन में बस एक बात मत टालना -- आत्मबोध

इंतजार ही इंतजार में उम्र को बिता दोगे? आशा ही आशा में उम्र को गंवा दोगे, या कि कुछ पाना है? पाना है तो कल पर मत छोड़ो। पाना है तो आज और अभी झांको। पाना है तो टालो मत। क्योंकि टालना सोने की एक प्रक्रिया है। टालना नींद का एक ढंग है। टालना नींद की दवा है। टालो मत। यह मत कहो कल। आज, अभी! जागना है तो अभी, सोना है तो कल। जो सोया सो खोया। क्योंकि आज टालेगा कल पर, कल फिर टालेगा कल पर। टालना आदत हो जाएगी। इंतजार कहीं तुम्हारी आदत न हो जाए। जिसे पाया जा सकता है, उसका इंतजार क्यों? जो तुम्हारे भीतर मौजूद है, उसका स्थगन क्यों? अभी क्यों नहीं? उससे ज्यादा मूल्यवान और कुछ भी नहीं है।

सब टालो, आत्मबोध मत टालना। सब टालो, जागने की आकांक्षा मत टालना। सब टालो, जागने पर सारी ऊर्जा को उंडेल दो। क्योंकि एक क्षण भर को भी तुम जाग जाओ और सपने बिखर जाएं, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति उपस्थित हो जाएगी। फिर तुम वही न हो सकोगे जो तुम थे। फिर तुम नये हो जाओगे। फिर तुम्हारा संबंध शाश्वत से जुड़ जाएगा। अमी झरत, बिगसत कंवल!

संसय मोह भरम की रैन।

बड़ी अंधेरी रात है। और अंधेरी रात बनी है संशय से, मोह से, भ्रम से। मन जीता ही संशय के भोजन से है। मन कहता हैः यह करो, वह करो। मन हमेशा यह या वह, इसमें डोलता रहता है। मन कभी तय ही नहीं कर पाता। मन का तय करना स्वभाव नहीं है। मन जीता ही अनिश्चय में है।

कभी तय भी तुम्हें करना पड़ता है तो तुम मजबूरी में तय करते हो। जब कोई विकल्प ही नहीं रह जाता, तब तय करते हो। मगर तब बहुत देर हो गई होती है।

दो तरह के लोग हैं यहां इस संसार में। भीड़ तो उनकी है जो बिना तय किए ही जीते हैं। जैसे पानी के झकोरों में डोलता हुआ लकड़ी का टुकड़ा..कभी इधर, कभी उधर, पानी की लहरें जहां ले जाएं। न कोई किनारे का पता है, न कोई मंजिल का होश है, न कुछ अपना बोध है। लहरों के भरोसे, लहरों के बंधन में बंधा, हवाओं के झोंकों में बंधा। न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। गति भी विक्षिप्त है। ऐसे ही अधिक लोग हैं।

तुम कैसे जी रहे हो, जरा गौर करना। तुम्हारा जीना करीब-करीब ऐसा ही है। राह पर जाते थे, किसी ने कहाः अरे, फलां फिल्म देखी कि नहीं? बड़ी सुंदर है! तुमने सोचा, चलो देख ही आएं। फिल्म देखने चल दिए। एक हवा का झोंका आया। एक धक्का लगा। फिल्म देख आए। फिल्म में पास कोई स्त्री बैठी थी। पहचान हो गई। यह सोचा ही नहीं था कि फिल्म में यह मामला इतना बढ़ जाएगा। विवाह कर बैठे। बाल-बच्चे हो गए। यह सब हुआ चला जा रहा है।

एक यहूदी विचारक ने अपनी आत्मकथा लिखी है। उसमें उसने लिखा है कि मेरा होना बिल्कुल संयोगवशात है। उसने लिखा है कि मैं शुरू से ही शुरू करता हूं, कि मेरे पिता एक ट्रेन में सफर कर रहे थे। स्टेशन पर उतरे। ट्रेन छह घंटे देर से पहुंची थी। आधी रात हो गई थी। बर्फ पड़ रही थी। रूस की कहानी है। टैक्सियां भी उपलब्ध न थीं। इतनी रात तक कोई टैक्सी ड्राइवर प्रतीक्षा करने रुका भी नहीं था। कोई और उपाय न देख कर, जो होटल के दरवाजे बंद हो रहे थे, भीतर गए और कहाः कम से कम एक कप कॉफी तो मुझे पीने मिल जाए, इसके बाद बंद करना।

जो महिला होटल बंद कर रही थी, उसने एक कप कॉफी दी। उसने खुद भी एक कप कॉफी पी। रात सर्द थी। फिर दोनों ने बातचीत की। यात्री ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। छह मील दूर जाना है, कोई टैक्सी नहीं।

उस महिला ने कहाः ऐसा करो कि मुझे भी घर जाना है, मेरी गाड़ी में ही आ जाओ।

गाड़ी में बैठ गए। सर्दी थी तो पास-पास सरक कर बैठे। होटल बंद थी। मैनेजर कभी का घर जा चुका था। ठहरने को कोई जगह न मिलती थी। तो उस महिला ने कहाः तुम मेरे ही घर रात गुजार दो। अब दो-चार घंटे तो रात और बची है। फिर सुबह उठ कर होटल चले जाना।

ऐसे बात बढ़ती गई, बढ़ती गई, बढ़ती गई और फिर बिगड़ कर रही! उस विचारक ने लिखा हैः काश, उस रात ट्रेन लेट न होती तो मैं कभी पैदा ही न होता; या कि होटल खुली मिल गई होती तो मैं पैदा न होता; या कि एकाध टैक्सी ड्राइवर भूला-भटका बैठा ही रह गया होता तो मैं पैदा न होता; या कि स्त्री जो होटल बंद कर रही थी, एक क्षण पहले होटल बंद करके जा चुकी होती तो मैं कभी पैदा ही न होता। बिल्कुल संयोगवशात मालूम होता है सब।

तुम जरा अपनी जिंदगी गौर से देखो, और तुम ऐसे ही संयोग पाओगे। ऐसे ही संयोगों का सिलसिला! इसको जिंदगी कहते हो? संयोगों के सिलसिले का नाम जीवन नहीं है। संयोगों का सिलसिला तो एक धोखा है। संयोगों के सिलसिले से तो ज्यादा से ज्यादा एक स्वप्न पैदा हो सकता है, सत्य निर्मित नहीं होता। लेकिन मन का ढंग यही है। मन ऐसे ही जीता है। मन ऐसे ही अनिश्चय में डांवाडोल होता रहता है। अंधा जैसे टटोलता-टटोलता कुछ पकड़ लेता है, पा लेता है..ऐसी हमारी जिंदगी है। और जो हम पा लेते हैं, वह भी मौत हमसे छीन लेती है।

संसय मोह भरम की रैन।

हमारे मोह क्या हैं? हमारी आसक्तियां क्या हैं?

बस ऐसे ही, संयोगवशात, नदी-नाव-संयोग! और कितने भ्रम हम पाल लेते हैं! हमने एक-दूसरे से कितनी आशाएं कर रखी हैं, कितनी अपेक्षाएं कर रखी हैं! यह भी नहीं सोचते कि दूसरा इन अपेक्षाओं को कभी पूरा कर पाएगा? इन आशाओं को पूरा कर पाएगा? और जब दूसरा पूरा नहीं कर पाता है तो हम सोचते हैं कि बड़ा धोखा खाया, बड़ा धोखा दिया गया।

कोई धोखा नहीं दे रहा है। तुम्हारी अपेक्षाएं ही ऐसी हैं जो कोई पूरी नहीं कर सकता। दूसरा भी तुम्हारे साथ इसीलिए है कि उसकी भी अपेक्षाएं हैं, तुम भी पूरी नहीं कर रहे हो। मोह हैं और मोह-भ्रांतियां टूटती हैं रोज! मगर नये मोह हम बना लेते हैं। ऐसे भ्रम, मोह, संशय, अनिश्चय की यह अंधेरी रात है। इस अंधेरी रात में हम खोज में लगे हैं। किसको खोज रहे हैं, यह भी पक्का नहीं है।

पश्चिम में दर्शनशास्त्र की परिभाषा ऐसी की जाती है..कि दार्शनिक ऐसा अंधा है, जो अंधेरी रात में, एक घनघोर अंधेरे कमरे में, एक काली बिल्ली को खोज रहा है, जो वहां है ही नहीं। एक तो अंधे, अमावस की रात, बंद कमरा, काली बिल्ली..और वह भी वहां है नहीं, खोज रहे हैं!

यह दर्शनशास्त्र की ही परिभाषा नहीं है, यह तुम्हारे जीवन की भी परिभाषा है।

अंधधुंध होए सोते अैन।

ऐसे नींद में और अंधापन बढ़ता है, और अंधेरा बढ़ता है।

रोज-रोज अंधेरा बढ़ रहा है, और रोज-रोज अंधापन बढ़ रहा है। बच्चों के पास तो थोड़ी आंख होती है, बूढ़ों के पास वह भी नहीं रह जाती। बच्चों के पास तो थोड़ा ताजा बोध होता है, बूढ़ों के पास वह भी धूमिल हो जाता है। खूब धुआं जम जाता है। धूल बैठ जाती है। बच्चों के पास तो थोड़ा निर्दोष चित्त भी होता है, बूढ़ों के पास कहां निर्दोष चित्त!

जीसस ने कहा हैः जो फिर से बच्चों की भांति हो जाएंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं। तुम्हें सीखनी होगी कला फिर से बच्चों की भांति होने की। छोड़ना होगा तथाकथित ज्ञान। छोड़ना होगा उधार पांडित्य, ताकि फिर तुम निर्दोष हो सको; ताकि फिर तुम खुली आंखों से जगत को, अस्तित्व को देख सको। छोड़ने होंगे स्वप्न, क्योंकि स्वप्नों में तुम जितने उलझ जाते हो, उतनी ही अपने पर दृष्टि जानी बंद हो जाती है।

गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है,
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

हर डग पर हर पग पर जाने अनजाने ही,
एक बूंद गिरती है और बिखर जाती है।
फूटी सी गागर की छलना का रूप देख,
अधरों की प्यास तनिक और सिहर जाती है।
रूप की दुपहरी तो ढलती ही जाती है,
तरुणाई प्यास किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है,
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

चाहों का मरुथल जब पीता अंगारों को,
नयनों का रत्नाकर और उमड़ पड़ता है।
ढलती हैं संध्या की घड़ियां तब चुपके से,
आशा का सूरज जब और तेज चढ़ता है।
संध्या तो रोज-रोज आकर छल जाती है,
अनबोली सांस किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है।
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

वासंती मौसम में शाख-शाख जागे जब,
फूल सी उमंग और रह-रह कर बढ़ती है।
अभिशापों की करवट लेकर तब अंगड़ाई,
पतझर का हाथ पकड़ धीमे से चढ़ती है।
पंखुरियां टूट-टूट बिखरी ही जाती हैं,
धूल की सुवास किंतु वैसी की वैसी है।
गागर तो बूंद-बूंद रिसती ही जाती है,
जीवन की आस किंतु वैसी की वैसी है।

और जीवन रोज चुका जा रहा है। जीवन रोज बहा जा रहा है। जागो! समय रहते जागो! पीछे बहुत पछतावा होगा। लेकिन फिर पछतावे में भी कुछ सार नहीं। जब तक शक्ति है, जागो!

और कल का क्या पता? अगले क्षण का भी पता नहीं है। श्वास जो बाहर गई, भीतर आएगी भी, इसका भी पक्का नहीं है। इसलिए जागो! क्षण भर भी मत टालो। इसी क्षण जागो!

-ओशो, अमी झरत, बिगसत कंवल

विकसित भारत के लिए ओशो का दृष्टिकोण

https://qr.ae/pYpVOe

ओशो, भारतीय दर्शन, ध्यान और चेतना के क्षेत्र में एक अद्वितीय व्यक्तित्व हैं। उनके विचार न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए प्रासंगिक हैं, बल्कि एक विकसित और समृद्ध समाज के निर्माण के लिए भी मार्गदर्शक हैं। विकसित भारत के लिए ओशो का दृष्टिकोण गहन आध्यात्मिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, और समाज के सामूहिक उत्थान पर आधारित है।

1. जीवन की निंदा-आलोचना नहीं, समादर की भावना

ओशो का मानना था कि जीवन का सम्मान ही समाज और देश के विकास का आधार है। उन्होंने कहा कि जीवन को नकारात्मकता या दोषों के चश्मे से नहीं देखना चाहिए। जीवन की आलोचना के बजाय, उसकी विविधता, सुंदरता और संभावनाओं का सम्मान करना चाहिए। जब लोग जीवन को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं, तो वे अपने भीतर नई ऊर्जा और उत्साह महसूस करते हैं, जो समाज की रचनात्मकता और उत्पादकता को बढ़ाता है। ओशो के अनुसार, जीवन को पूरी तरह से जीने की कला ही एक विकसित समाज की पहचान है। समादर की भावना हमें न केवल दूसरों के जीवन का मान करना सिखाती है, बल्कि अपनी क्षमताओं को पहचानने और उनका उपयोग करने का भी अवसर देती है।

2. धन, तन, मन की उपेक्षा नहीं, स्वीकृति और सम्मान

ओशो ने इस बात पर जोर दिया कि धन, तन और मन—ये तीनों जीवन के आवश्यक अंग हैं। इन्हें तिरस्कार या उपेक्षा के बजाय, उचित सम्मान और स्वीकृति दी जानी चाहिए। उन्होंने बताया कि धन जीवन का एक साधन है, न कि समस्या। तन की देखभाल और स्वास्थ्य जीवन की आधारशिला है, और मन की शुद्धता तथा सजगता आत्म-विकास के लिए आवश्यक है। एक समाज तभी विकसित हो सकता है जब ये तीनों तत्व संतुलित और सम्मानित हों। ओशो ने सिखाया कि समाज में धनवान और स्वस्थ व्यक्तियों को दोष देने के बजाय, उनके जीवन की गुणवत्ता को समझने और उसका अनुकरण करने की आवश्यकता है। यह दृष्टिकोण जीवन को समग्रता से जीने का मार्ग प्रदान करता है।

3. पलायनवादियों की नहीं, प्रतिभाशालियों की इज्जत

ओशो का दृष्टिकोण था कि समाज को पलायनवादी सोच से उबरकर प्रतिभा और रचनात्मकता का सम्मान करना चाहिए। उन्होंने बताया कि समाज के विकास में उन्हीं का योगदान होता है, जो नई सोच, साहस और नवाचार के साथ काम करते हैं। पलायनवादी लोग समस्याओं से बचने का प्रयास करते हैं, जबकि प्रतिभाशाली व्यक्ति समाधान खोजने की कोशिश करते हैं। ओशो ने प्रतिभाशाली व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने और उनके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने की आवश्यकता पर जोर दिया। यदि समाज में प्रतिभा का सम्मान किया जाएगा, तो लोग अपने कौशल और ज्ञान का पूरा उपयोग कर पाएंगे, जिससे राष्ट्र के विकास को गति मिलेगी।

4. त्याग-तपस्या की नहीं, सुखद जीवन शैली की प्रतिष्ठा

ओशो ने पारंपरिक त्याग और तपस्या के आदर्शों की आलोचना करते हुए एक सुखद और आनंदमय जीवन शैली को प्राथमिकता दी। उनका मानना था कि त्याग का महिमामंडन व्यक्ति और समाज को जीवन की खुशियों से वंचित करता है। सुखद जीवन शैली केवल भौतिक संपन्नता नहीं है, बल्कि यह मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक

समृद्धि का समन्वय है। उन्होंने कहा कि जब लोग खुशी से जीते हैं, तो वे अधिक उत्पादक, रचनात्मक और सकारात्मक होते हैं। समाज को ऐसे मूल्यों को बढ़ावा देना चाहिए, जो व्यक्तिगत और सामूहिक खुशी को प्राथमिकता देते हैं।

5. अंधविश्वास नहीं, विचार, संदेह, वैज्ञानिक सोच का समर्थन

ओशो ने देश के विकास के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कशीलता को अनिवार्य माना। उन्होंने अंधविश्वास और पुरानी रूढ़ियों की आलोचना की और लोगों को खुली सोच अपनाने की प्रेरणा दी। उनके अनुसार, संदेह कोई बुरी चीज नहीं है; यह व्यक्ति को सत्य की खोज में मदद करता है। उन्होंने कहा कि जब लोग तर्क, विवेक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ समस्याओं का समाधान खोजते हैं, तो समाज प्रगति करता है। ओशो ने वैज्ञानिक सोच को न केवल तकनीकी विकास के लिए, बल्कि सामाजिक और आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान के लिए भी महत्वपूर्ण बताया।

6. आध्यात्मिकता का पुनर्जागरण

ओशो का मानना था कि भारत की आत्मा उसकी आध्यात्मिक धरोहर में निहित है। उन्होंने बार-बार कहा कि भारत को अपनी प्राचीन परंपराओं और ध्यान की तकनीकों को पुनः अपनाना चाहिए। ध्यान और योग न केवल व्यक्तिगत शांति लाते हैं, बल्कि समाज में सामूहिक सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं। ओशो के अनुसार, यदि भारत अपने नागरिकों को ध्यान और आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित करता है, तो यह सामाजिक समस्याओं जैसे तनाव, भ्रष्टाचार, और असमानता को समाप्त कर सकता है।

7. शिक्षा का कायाकल्प

ओशो ने भारतीय शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते हुए इसे रटने और डिग्रियों तक सीमित बताया। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षा को रचनात्मकता, स्वतंत्र सोच, और आत्मज्ञान के साधन के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। यदि युवा पीढ़ी को विज्ञान और कला के साथ-साथ ध्यान और आत्मनिरीक्षण की शिक्षा दी जाए, तो यह उन्हें न केवल कुशल पेशेवर बनाएगा, बल्कि संवेदनशील और जागरूक नागरिक भी बनाएगा।

8. धर्म और विज्ञान का संतुलन

ओशो का मानना था कि धर्म और विज्ञान को विरोधी के रूप में नहीं, बल्कि पूरक के रूप में देखा जाना चाहिए। एक विकसित भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी प्राचीन आध्यात्मिकता को आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़कर प्रगति करे। तकनीकी और वैज्ञानिक विकास को नैतिकता और मानवीय मूल्यों से जोड़ा जाए, तो यह समाज के सर्वांगीण विकास का आधार बनेगा।

9. स्वतंत्रता और स्वायत्तता

ओशो ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर दिया। उनके अनुसार, एक विकसित समाज तभी संभव है जब लोग मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्र हों। उन्होंने बताया कि समाज को विचारों, अभिव्यक्ति, और व्यक्तिगत निर्णयों पर लगी बंदिशों को हटाना चाहिए। जब नागरिक स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं, तो वे रचनात्मक और नवाचारशील बनते हैं, जो किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है।

10. सामाजिक समानता और प्रेम का प्रसार

ओशो ने सामाजिक असमानता और जातिवाद की कड़ी आलोचना की। उनका दृष्टिकोण था कि प्रेम और करुणा के बिना समाज का उत्थान संभव नहीं है। उन्होंने समाज में एक ऐसे वातावरण के निर्माण की बात की जहां लोग प्रेम और सहयोग के साथ कार्य करें।

11. दहेज और जन्म कुंडली केंद्रित नहीं, वरन प्रेम आधारित विवाह और परिवार व्यवस्था

ओशो ने विवाह को पारंपरिक बंधनों और दहेज प्रथा से मुक्त करने पर जोर दिया। उनका मानना था कि विवाह केवल सामाजिक दबाव या जन्म कुंडली जैसे तर्कों पर आधारित न होकर, प्रेम और आपसी समझ पर आधारित होना

चाहिए। दहेज प्रथा जैसे कुप्रथाओं ने महिलाओं के आत्मसम्मान और परिवार के संतुलन को बुरी तरह प्रभावित किया है। ओशो ने सिखाया कि विवाह एक आध्यात्मिक और भावनात्मक संबंध है, जो केवल प्रेम और सहमति के आधार पर सफल हो सकता है। यदि विवाह प्रेम पर आधारित हो, तो परिवारों में शांति और सामंजस्य स्थापित होता है, जिससे समाज भी प्रगति करता है। यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है।

12. वर्ग संघर्ष नहीं, वरन पारस्परिक सहयोग

ओशो ने वर्ग संघर्ष की अवधारणा को खारिज करते हुए समाज में सहयोग और सामंजस्य पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि वर्गों के बीच संघर्ष केवल विभाजन और हिंसा को बढ़ावा देता है। इसके विपरीत, यदि समाज के विभिन्न वर्ग एक-दूसरे के प्रति सम्मान और सहयोग की भावना से काम करें, तो समाज में संतुलन और प्रगति संभव है। ओशो के अनुसार, प्रत्येक वर्ग का योगदान समाज के लिए आवश्यक है। किसान, श्रमिक, व्यवसायी और विद्वान, सभी समाज रूपी शरीर के महत्वपूर्ण अंग हैं। उनका यह दृष्टिकोण समाज को विभाजन से मुक्त कर, एकजुटता और सहिष्णुता की ओर प्रेरित करता है।

13. गणतंत्र की जगह गुणतंत्र

ओशो ने लोकतंत्र की परंपरागत अवधारणा की आलोचना करते हुए "गुणतंत्र" का विचार प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि केवल बहुमत का शासन ही पर्याप्त नहीं है; नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथों में होना चाहिए जो योग्य, बुद्धिमान और नैतिक हों। उन्होंने कहा कि समाज को ऐसे नेताओं की आवश्यकता है, जो केवल राजनीतिक चालों में माहिर न हों, बल्कि जिनके पास देश के समग्र विकास की दृष्टि हो। गुणतंत्र समाज में श्रेष्ठता और योग्यता के आधार पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्राथमिकता देता है। इस प्रणाली में नैतिकता और क्षमता को महत्व दिया जाता है, जिससे समाज को प्रभावशाली और दूरदर्शी नेतृत्व मिलता है।

14. जनसंख्या नियंत्रण—अनिवार्य संतति नियमन

ओशो ने जनसंख्या वृद्धि को एक गंभीर समस्या बताया और इसे नियंत्रित करने के लिए अनिवार्य संतति नियमन की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि असीमित जनसंख्या वृद्धि संसाधनों पर दबाव डालती है और गरीबी, बेरोजगारी, और पर्यावरणीय संकट को जन्म देती है। ओशो का दृष्टिकोण था कि परिवार नियोजन केवल व्यक्तिगत निर्णय नहीं, बल्कि एक सामूहिक जिम्मेदारी होनी चाहिए। संतति नियमन के लिए सरकार को प्रभावी नीतियां और शिक्षा कार्यक्रम लागू करने चाहिए, ताकि लोग इस मुद्दे की गंभीरता को समझें। जनसंख्या नियंत्रण से समाज में संतुलन और आर्थिक स्थिरता संभव है।

15. एक ही कानून सब नागरिकों पर लागू

ओशो ने समाज में समानता और न्याय के लिए एकल कानून प्रणाली की आवश्यकता पर जोर दिया। उनका मानना था कि विविध धर्मों और वर्गों के लिए अलग-अलग कानून समाज में भेदभाव और असमानता को बढ़ावा देते हैं। यदि सभी नागरिकों पर समान कानून लागू हो, तो यह समाज में एकता और न्याय सुनिश्चित करेगा। एकल कानून प्रणाली से किसी भी धर्म, जाति, या लिंग के प्रति भेदभाव समाप्त होगा और सभी को समान अधिकार और दायित्व प्राप्त होंगे। ओशो का यह दृष्टिकोण समाज में शांति, स्थिरता और पारस्परिक सम्मान को बढ़ावा देने का मार्गदर्शक है।

16. नारी स्वतंत्रता—स्त्री अपने निजी नैसर्गिक गुणों का विकास करे

ओशो का मानना था कि नारी स्वतंत्रता का अर्थ पुरुषों की नकल करना नहीं, बल्कि अपने नैसर्गिक गुणों और क्षमताओं का विकास करना है। उन्होंने कहा कि स्त्री में प्रेम, करुणा और रचनात्मकता जैसे विशेष गुण होते हैं, जो समाज को समृद्ध बनाते हैं। नारी स्वतंत्रता का अर्थ है कि स्त्री अपने जीवन के हर पहलू में अपनी पसंद और निर्णय लेने में सक्षम हो। जब स्त्रियां अपने स्वाभाविक गुणों को पहचानकर उनका विकास करती हैं, तो वे समाज के हर क्षेत्र में

महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। ओशो ने समाज से उन रूढ़िवादी सोचों को दूर करने की आवश्यकता पर जोर दिया, जो महिलाओं को सीमित करती हैं। उनका यह दृष्टिकोण महिलाओं को आत्मनिर्भर, सशक्त और समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत बनने की दिशा में प्रोत्साहित करता है।

17. बच्चों की स्वतंत्रता—जबरदस्ती उन्हें कुछ बनाने का प्रयास नहीं, स्वयं खिलने का अवसर दिया जाए

ओशो ने बच्चों की स्वतंत्रता को एक विकसित समाज की अनिवार्यता बताया। उनका मानना था कि बच्चों पर अपने सपने थोपने या उन्हें किसी खास ढांचे में ढालने का प्रयास उनकी रचनात्मकता को नष्ट करता है। उन्होंने सिखाया कि बच्चों को उनके स्वभाव और रुचियों के अनुसार स्वयं विकसित होने का अवसर दिया जाना चाहिए। हर बच्चा अपनी अनोखी क्षमता और गुणों के साथ आता है, जिन्हें प्रोत्साहित करना माता-पिता और शिक्षकों का दायित्व है। जब बच्चे दबाव या प्रतिस्पर्धा से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से खिलते हैं, तो वे आत्मनिर्भर, खुशहाल और समाज के लिए उपयोगी बनते हैं। ओशो का यह दृष्टिकोण बच्चों में आत्म-स्वीकृति और आत्मविश्वास को बढ़ावा देता है, जो एक सशक्त समाज के निर्माण की नींव है।

18. अपराधियों को दंड की नहीं, मनोचिकित्सा की आवश्यकता है

ओशो ने पारंपरिक दंड प्रणाली की आलोचना करते हुए कहा कि अपराधियों को दंडित करने के बजाय उनकी मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक समस्याओं का समाधान करना चाहिए। उन्होंने अपराध को समाज और व्यक्ति की सामूहिक विफलता माना। ओशो के अनुसार, अपराधी का व्यवहार उसकी मानसिक स्थिति का परिणाम होता है, जिसे समझकर और सुधारकर अपराधों को रोकना संभव है। मनोचिकित्सा अपराधी को आत्मनिरीक्षण और जागरूकता के माध्यम से अपने व्यवहार को सुधारने में मदद करती है। यह दृष्टिकोण न केवल अपराधी के जीवन को बेहतर बनाता है, बल्कि समाज में अपराध की पुनरावृत्ति को भी रोकता है। ओशो की इस सोच से एक सहिष्णु और पुनर्वास केंद्रित न्याय प्रणाली का निर्माण हो सकता है।

19. धर्म-जाति-आयु आदि से परे, सरल से ध्यान का संदेश फैलाया जाए

ओशो का ध्यान पर आधारित संदेश मानवता को जोड़ने का माध्यम है। उनका मानना था कि ध्यान किसी धर्म, जाति, या आयु से परे है; यह हर व्यक्ति की आंतरिक शांति और आत्मिक विकास का मार्ग है। उन्होंने ध्यान को सरल, सुलभ और हर व्यक्ति के जीवन में लागू करने योग्य बताया। ओशो के ध्यान के तरीकों में कोई जटिलता नहीं है, और वे आधुनिक जीवन की जरूरतों के अनुरूप हैं। जब ध्यान का संदेश धर्म और अन्य विभाजनों से परे फैलाया जाएगा, तो यह व्यक्ति के भीतर शांति और समाज में सामूहिक सौहार्द का वातावरण बनाएगा। उनका यह दृष्टिकोण न केवल व्यक्ति को मानसिक और भावनात्मक रूप से सशक्त करता है, बल्कि पूरी मानवता को एकता और सामंजस्य की ओर प्रेरित करता है।

20. प्रतिभा की स्वतंत्रता—विश्वस्तर पर विज्ञान, कला और ध्यान अकादमी

ओशो का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में अद्वितीय प्रतिभा होती है, जिसे सही वातावरण और स्वतंत्रता देकर विकसित किया जा सकता है। उन्होंने सुझाव दिया कि विश्वस्तर पर ऐसे संस्थानों की स्थापना होनी चाहिए, जहां विज्ञान, कला, और ध्यान को एक साथ विकसित किया जाए। इन अकादमियों का उद्देश्य न केवल ज्ञान का विस्तार करना हो, बल्कि व्यक्ति को उसकी पूरी क्षमता तक पहुँचने में मदद करना भी हो।

विज्ञान मानवता को भौतिक समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रदान करता है, जबकि कला जीवन की सुंदरता और रचनात्मकता का प्रतीक है। ध्यान, इन दोनों के साथ, आत्मिक शांति और संतुलन लाता है। ओशो के अनुसार, जब ये तीनों क्षेत्र एक जगह पर एकत्रित होंगे, तो मानव सभ्यता एक नए स्तर पर पहुँच सकती है।

इन अकादमियों में शिक्षा का स्वरूप केवल सूचनाओं तक सीमित न होकर, रचनात्मकता और आत्मनिरीक्षण पर आधारित होगा। यहां व्यक्ति को अपनी रुचि और प्रतिभा के अनुसार स्वतंत्रता दी जाएगी। ओशो ने कहा कि जब प्रतिभाओं को बंधन मुक्त वातावरण मिलता है, तो वे केवल व्यक्तिगत सफलता ही नहीं, बल्कि समाज और पूरी मानवता की प्रगति में योगदान देती हैं। ऐसी अकादमियां वैश्विक एकता और शांति का भी मार्ग बन सकती हैं।

आज विज्ञान, राजनीति और पूंजीवाद के हाथों एक उपकरण बन चुका है। वैज्ञानिकों की प्रतिभा और अनुसंधान का उपयोग जनहित के बजाय, शक्तिशाली राजनीतिक एजेंडा और पूंजीपतियों के लाभ के लिए किया जा रहा है। इस दासता से विज्ञान को मुक्त करना और इसे मानवता के कल्याण में लगाना अत्यंत आवश्यक है। विज्ञान का वास्तविक उद्देश्य समाज की प्रगति, मानव जीवन को सरल बनाना, और वैश्विक समस्याओं का समाधान खोजना होना चाहिए।

ओशो का मानना था कि यह तभी संभव है जब विज्ञान को स्वतंत्र और निष्पक्ष बनाया जाए। इसके लिए एक अंतर्राष्ट्रीय अकादमी की स्थापना की जानी चाहिए, जो विज्ञान को राजनीति और पूंजीवाद के प्रभाव से मुक्त करे। इस अकादमी का संचालन किसी सरकार या निजी संस्था के बजाय, पूरी दुनिया के नागरिकों द्वारा आर्थिक सहयोग से किया जाए। जब सामान्य नागरिक वैज्ञानिक प्रयासों को प्रत्यक्ष रूप से समर्थन देंगे, तो यह सुनिश्चित होगा कि अनुसंधान का उद्देश्य मानव कल्याण होगा, न कि निजी हित।

यह अकादमी न केवल नई तकनीकों और समाधानों पर काम करेगी, बल्कि वैश्विक चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, गरीबी और स्वास्थ्य संकट को भी संबोधित करेगी। विज्ञान की यह स्वतंत्रता मानवता के लिए नई दिशा और आशा का मार्ग बनेगी। वैज्ञानिक की आर्थिक दासता समाप्त करने पर ही, जनहित और मानव कल्याण में उसकी भागीदारी आरंभ हो सकेगी। वह किसी की नौकरी न करे, वह स्वाधीन कार्य कर सके, तभी जगत का मंगल संभव है।

21. राष्ट्रों की सीमाओं का विलय, वसुधैव कुटुंबकम्—एक विश्व सरकार

ओशो ने "वसुधैव कुटुंबकम्" के विचार को आधुनिक दुनिया के लिए अत्यंत प्रासंगिक बताया। उन्होंने कहा कि राष्ट्रों की सीमाएं युद्ध, विभाजन और शोषण का कारण बनती हैं। यदि इन सीमाओं को समाप्त कर एक विश्व सरकार का निर्माण किया जाए, तो मानवता एकता और शांति की ओर बढ़ सकती है। ओशो ने तर्क दिया कि सभी मानव समान हैं और उन्हें कृत्रिम सीमाओं से बांधना अनुचित है। एक विश्व सरकार न केवल आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को हल करेगी, बल्कि युद्ध और पर्यावरण संकट जैसे वैश्विक मुद्दों को भी सुलझाने में सक्षम होगी।

निष्कर्ष: ओशो का दृष्टिकोण विकसित भारत के लिए केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है। उनके विचार एक ऐसे भारत की परिकल्पना करते हैं जो आत्मिक रूप से जागरूक, वैज्ञानिक रूप से सक्षम, और सामाजिक रूप से समरस हो। यदि भारत ओशो के दृष्टिकोण को अपनाता है, तो यह न केवल एक आर्थिक महाशक्ति बनेगा, बल्कि एक ऐसा राष्ट्र भी बनेगा जो पूरी दुनिया के लिए प्रेरणा स्रोत होगा।